वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 279
ISBN 978-93-82071-26-6

प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर परिचय एवं पूजा

–प्रस्तुति–

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव, 11 अक्टूबर 2011 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में
पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित
''प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष'' के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.-250404
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

द्वितीय संस्करण वीर नि. सं. 2538, द्वि. भाद्रपद शुक्ला 4 मूल्य
1100 प्रतियाँ दशलक्षण महापर्व-19 सितम्बर 2012 32/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशक एवं सम्पादक :–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

–: प्रबंध सम्पादक :–

बाल ब्र. जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण (सन् 2007)-2200 प्रतियाँ

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

जैनधर्म के 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के पश्चात् का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि इन ढाई हजार वर्षों में किन्हीं आर्यिका माता के द्वारा साहित्य लेखन का कार्य नहीं हुआ। आज से 50 वर्ष पूर्व पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने अपनी लेखनी चलाकर इस परम्परा का सूत्रपात किया और यह गौरव की बात है कि वह परम्परा अद्यावधि निर्बाधरूप से चली आ रही है।

पूज्य माताजी ने इन वर्षों में अपनी लेखनी से 1-2 नहीं अपितु 250 से भी अधिक ग्रंथों की रचना करके एक कीर्तिमान स्थापित किया है। पूज्य माताजी द्वारा लिखित पुस्तकें, ग्रंथ तथा विशेषरूप से विधानों की तो आज सारे भारत में बहुत ही अधिक प्रसिद्धि है। अनेकानेक साहित्यलेखन की श्रृँखला में पूज्य माताजी ने अपने आर्यिका दीक्षागुरु परमपूज्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के जीवनवृत्त को संस्कृत के 100 श्लोकों में निबद्ध करके अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है।

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज के प्रथम शिष्य प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर महाराज का वर्ष आचार्यश्री की प्रमुख शिष्या गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा सेमनाया जा रहा है। उसके अन्तर्गत पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा प्रस्तुत ''प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर परिचय एवं पूजा'' नामक इस पुस्तक में ''आचार्यश्री वीरसागर शतकम् (संस्कृत-हिन्दी)'', आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज का परिचय, नाटक, पूजन, चालीसा, भजन, आरती आदि प्रकाशित हैं जिसके माध्यम से आचार्यश्री के जीवनवृत्त को सरलता से समझकर आप सभी लोग चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज की आर्षमार्गी निर्दोष अक्षुण्ण परम्परा से परिचित हों तथा आचार्यश्री की भक्ति आदि करके क्रम-क्रम से अपनी संसार-परम्परा को समाप्त करने का पुरुषार्थ करें, यही मंगलकामना है।

प्रस्तावना

–ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए आचार्यों ने कहा है–

गुरुभत्ति संजमेण य, तरंति संसार सायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति।।

अर्थात् गुरुभक्ति संसाररूपी घोर सागर से पार कराती है, अष्टकर्मों का छेदन करती है तथा गुरुभक्ति करने वाले जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाते हैं।

गुरुभक्ति के अनेकों उदाहरण शास्त्रों में पढ़ने को मिलते हैं। गुरु द्रोणाचार्य और एकलव्य का उदाहरण भी अत्यधिक प्रसिद्ध है। भारत में प्रचलित लगभग प्रत्येक सम्प्रदाय में गुरु को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है जिनने भगवान को भी नहीं माना, उन्होंने भी गुरु की महिमा को हृदय से स्वीकार किया है।

इसी श्रृँखला में आज हम देखते हैं कि गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के हृदय में अपने दीक्षागुरु आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज के प्रति असीम गुरुभक्ति का स्रोत प्रवाहित होता रहता है। वे हमेशा अपने दीक्षागुरु का स्मरण करके उनके अनुभवों के बारे में बताती रहती हैं।

वर्तमान में पूज्य माताजी ने ''आचार्य श्री वीरसागर वर्ष'' के अवसर पर यह घोषणा की है कि उन आचार्यश्री का कार्यक्रम मनाया जाये। इस समारोह का उद्घाटन 11 अक्टूबर 2011 को होकर 29 अक्टूबर 2012, शरदपूर्णिमा तक यह समारोह विभिन्न स्थानों पर मनाया जा रहा है, जिसके माध्यम से जनमानस को आचार्यश्री के स्वर्णमयी व्यक्तित्व से सुपरिचित होने का पावन अवसर प्राप्त हो रहा है।

इसी वर्ष के अन्तर्गत प्रकाशित इस पुस्तक में पूज्य गणिनी ज्ञानमती माताजीद्वारा रचित ''वीरसागर शतकम्'' में संस्कृत के 100 पद्यों के माध्यम से पूज्य आचार्यश्री का सम्पूर्ण जीवनवृत्त सजीवता से वर्णित किया गया है तथा प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी द्वारा लिखित गद्य-पद्य परिचय में पूज्य आचार्यश्री के जीवन की कई रोचक शिक्षात्मक घटनाओं को, उनके खट्टे-मीठे अनुभवों को सरलता से लिपिबद्ध किया गया हैतुनः अंत में प्रश्न-उत्तर एवं नाटक के माध्यम से आचार्यश्री के जीवन को सुगमता से समझानेका प्रयास किया गया है। आचार्यश्री की पूजन, चालीसा, भजन, आरती भी पुस्तक में प्रकाशित हैं जिसके माध्यम से आप लोग आचार्यश्री के जीवन को जानकर, उनके जीवन सेकुछ शिक्षाएँ ग्रहण करके अपने जीवन को भी पावन बनाने का प्रयास करें, यही मंगलकामना है।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम आचार्य चारित्रचक्रवर्ती

श्री शांतिसागर महाराज : एक दृष्टि में

स्वस्ति श्री मूलसंघ में कुंदकुंदाम्नाय, सरस्वती गच्छ, बलात्कार गण में बीसवीं शताब्दी में प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य-चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज हुए हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है–

जन्म	–	आषाढ़ बदी 6, सन् 1872
निवास स्थान	–	भोजग्राम (जिला-बेलगाँव) कर्नाटक
नाम	–	सातगौंडा पाटिल
माता-पिता	–	माता-सत्यवती, पिता-भीमगौंडा पाटिल
क्षुल्लक दीक्षा	–	ज्येष्ठ शु. 13, सन् 1914 ग्राम-उत्तूर (जि. कोल्हापुर) महाराष्ट्र
दीक्षा गुरु	–	मुनि 108 श्री देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज
ऐलक दीक्षा	–	सन् 1917 गिरनार क्षेत्र, स्वयं भगवान के चरण सानिध्य में
मुनि दीक्षा	–	फाल्गुन शु. 14, सन् 1920 ग्राम-येरनाल (जिला-बेलगांव) कर्नाटक
दीक्षा गुरु	–	मुनि श्री 108 देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज
आचार्य पद	–	आश्विन शु. 11, सन् 1924 ग्राम-समडोली (जिला-सांगली-महाराष्ट्र) द्वारा-चतुर्विध संघ
चारित्र चक्रवर्ती पद	–	सन् 1937 गजपंथा सिद्धक्षेत्र (महा.)
समाधिमरण	–	द्वि. भाद्रपद शु. 2, सन् 1955, कुंथलगिरि (सिद्धक्षेत्र)

आचार्य देव ने अनेक दीक्षाएँ देकर चतुर्विध संघ सहित दक्षिण से उत्तर और पूर्व से पश्चिम तक सारे भारत में मंगल विहार करके दिगम्बर जैन मुनि परंपरा को पुनरुज्जीवित किया। अनेक तीर्थों पर जिनप्रतिमाएँ स्थापित करायीं, षट्खण्डागम ग्रंथ को ताम्रपट्ट पर उत्कीर्ण कराकर तथा विद्वानों से उनका हिन्दी अनुवाद करवाकर पुस्तकों के रूप में भी प्रकाशित करवाकर जिनवाणी को स्थायित्व प्रदान किया। ऐसे बहुत से जिनधर्म प्रभावना के कार्यों से इस भूतल पर अपने यश को चिरस्थायी कर दिया।

आपने अंत में कुंथलगिरि क्षेत्र पर सल्लेखना लेकर अपने जीवनकाल में अपना आचार्यपद अपने प्रथम शिष्य मुनि श्री वीरसागर को प्रदान किया था। पुनः उनकी परम्परा में द्वितीय पट्टाचार्य श्री शिवसागर मुनिराज हुए, तृतीय पट्टाचार्य श्री धर्मसागर महाराज, चतुर्थ पट्टाचार्य श्री अजितसागर महाराज, पंचम पट्टाचार्य श्री श्रेयांससागर महाराज हुए हैं पुनः आचार्य श्री श्रेयांससागर जी महाराज की सन् 1992 में समाधि होने के पश्चात् उनके पट्ट पर आचार्यश्री अभिनंदनसागर महाराज हुए हैं, जो वर्तमान पट्टाचार्य (छठे पट्टाचार्य) के रूप में चतुर्विध संघ का संचालन करते हुए जिनधर्म की प्रभावना कर रहे हैं।

प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर महाराज का संक्षिप्त परिचय

स्वस्ति श्री मूलसंघ में कुन्दकुन्दाम्नाय, सरस्वती गच्छ, बलात्कारगण में बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्यश्री वीरसागर महाराज हुए हैं। उनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है–

जन्म–आषाढ़ शु. 15, सन् 1876, वि.सं. 1933
ग्राम–वीर (जि.-औरंगाबाद, महाराष्ट्र)
नाम–हीरालाल
गोत्र–गंगवाल
पिता–श्री रामसुख जैन
माता–श्रीमती भाग्यवती जैन (भागू बाई)
क्षुल्लक दीक्षा–फाल्गुन शु. 7, सन् 1923 (वि.सं. 1980)
नाम–श्री वीरसागर महाराज
मुनिदीक्षा–आश्विन शु. 11, सन् 1924 (वि.सं. 1981)
ग्राम–समडोली-महाराष्ट्र
दीक्षागुरु–चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज
आचार्य पद घोषणा–कुंथलगिरि में आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज द्वारा प्रथम भाद्रपद शु. 7, सन् 1955 (वि.सं. 2012)
आचार्यपदारोहण–द्वि. भाद्रपद कृ. 7, सन् 1955 (वि.सं. 2012)
स्थान–खानिया-जयपुर (राज.)
समाधिमरण–आश्विन कृ. अमावस्या, सन् 1957 (वि.सं. 2014)
स्थान–खानिया-जयपुर (राज.)

आपके द्वारा दीक्षित मुनि श्री शिवसागर जी एवं मुनि श्री धर्मसागर जी इसी परम्परा के पट्टाचार्य बने हैं। ऐसे ही आपके द्वारा दीक्षित स्व. आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर महाराज आदि अनेक मुनि एवं स्व. आर्यिका श्री वीरमती जी, स्व. आर्यिका श्री सुमतिमती जी, गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती जी, गणिनी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती जी आदि अनेक आर्यिकाएँ प्रसिद्ध हुई हैं।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान–टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि–आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति–अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र**–गोयल, **नाम**–कु. मैना

माता-पिता–श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत–ई. सन् 1952 में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा–चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम– क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा–वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व–अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं 250 विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद् उपाधि–सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा–हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा– भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा–पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा–'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा–जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 से हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं–

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।
2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।
3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।
4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है– कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना, तीन लोक रचना, नवग्रहशांति जिनमंदिर, चौबीस मंदिर एवं श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग प्रतिमाओं की स्थापना ।
5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।
6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये करोड़ों णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।
7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।
8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।
9. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।
10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।
11. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।
12. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना एवं धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन करने वाले थियेटर से समन्वित गणिनी ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं भौतिक सुख की प्राप्ति करें।

आचार्य श्री वीरसागर स्तुतिः

-गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी

स्वात्मैकनिष्ठं नृसुरादिपूज्यं। षड्जीवकायेषु दयार्द्रचित्तं।।
श्री वीरसिंधुं भववार्धिपोतमाचार्यवर्यं त्रिविधं नमामि।।1।।

यो भव्यजीवाननुगृह्य सम्यक्। वृत्तं सुबोधं श्रयणं ददानः।।
दोषादिजातेऽपि विशोध्यमानः। सार्वो गभीरः पृथुधर्मतीर्थः।।2।।

रत्नत्रयाख्यं निधिमादधानः। निष्किंचनोऽयं कथमुच्यते ज्ञैः।।
सत्त्वानुकंपी च विशुद्धबुद्धिः। कर्मारिकक्षाय खरः कुठारः।।3।।

स्वान्तान्धकारान्तकभास्करः स्यात्। स्याद्वादविद्योदधिचंद्रमाश्च।।
त्राता विधाता शरणं गतानाम्। आश्रीयसेऽतस्स्वयमेव भव्यैः।।4।।

स्वाध्यायध्यानादिक्रियासु सक्तः। संसारभोगेषु विरक्तचित्तः।।
बाह्यांतरंगं तप आचरन् यो। दुःखाभिभूतो न हि बाह्यक्लेशात्।।5।।

स्वात्मोत्थसौख्यास्वदनेऽनुरक्तः। वैभाविके वैषयिके विरक्तः।।
कंदर्पमायाक्रुधमानलोभान्। जित्वा रिपून् ''वीर'' इति प्रसिद्धः।।6।।

यो मुख्यशिष्यो गुरुशान्तिसिन्धोः। सूरेः चतुःसंघहिते वरिष्ठः।।
दीक्षाव्रतादेशविधौ विधिज्ञः। तं सूरिवर्यं प्रणमामि भक्त्या।।7।।

हे वीर! हे धीर! भवाब्धितीर! कारुण्यरत्नाकर! विश्वसेव्य।।
भव्याब्जबन्धो! सुविनेयजीवान्। संसारदुःखाल्लघु पाहि मां च।।8।।

त्वां संघसंवर्धक! संस्तवीमि। हे मोहसंमर्दक! नंनमीमि।।
कामारिजेतः गुरुवीरसिन्धो। पादारविंदद्वयमाश्रयामि।।9।।

नमामि स्तौम्यहं नित्यं, ज्ञानमत्यार्यिका मुदा।
गुरुभक्त्या तितीर्षामि, संसारार्णवदुस्तरम्।।10।।

आचार्य श्री वीरसागर शतकम्

-गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी

सिद्धार्थस्यात्मजं वीरं, सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
भव्यचित्ताब्जभास्वंतं, भक्त्या नित्यं नमाम्यहं।।1।।

वाणीमनक्षरीं वंदे, सर्वभाषामयीमपि।
यत्प्रसादाद् भवेद् वाणी, स्वपरालादकारिणी।।2।।

गणेशान्पाठकान्साधून्, सर्वविघ्नविनायकान्।
वंदे सर्वानिमान् नित्यं, भक्त्या तत्तद्गुणाप्तये।।3।।

कलौ काले मुनेर्धर्म-प्रवर्ता शान्तिसागरः।
चारित्रचक्रभृत्तस्मै, नमोऽस्तु स्यात् त्रिशुद्धितः।।4।।

यत्पादाम्बुजमाश्रित्य, भव्याश्चारित्रमाप्नुवन्।
संसाराम्बुधितीर्णाय, नोऽव्यात्सः सूरिपुंगवः।।5।।

श्री वीरसागराचार्यं, नत्वा तद्भक्तिप्रेरितः।
पावनं जीवनं तस्य, मनाक् वक्तुं किलोत्सहे।।6।।

महाराष्ट्रप्रदेशे स्यादौरंगाबादपत्तनः।
वीराख्यस्तत्र ग्रामोऽस्ति, रम्यो धर्मसुखाकरः।।7।।

जिनचैत्यालयस्तस्मिन्, पुण्यलक्ष्मीसमाश्रयः।
उत्तुंगशिखरैर्भाति, स्वर्गधामस्पृशन्निव।।8।।

धनधान्यसमाकीर्णाः, गेहिनः न्यवसन् मुदा।
सुखशान्त्यैषिणः सर्वे, धर्मकर्मपरायणाः।।9।।

खंडेलवालजातीयः, कश्चित् स्यात् श्रावकोत्तमः।
श्रेष्ठीरामसुखाख्योऽसौ, जिनधर्मसमन्वितः।।10।।

तस्य भार्या प्रियालापा, भागूबाईति विश्रुता।
गुणशीलपवित्रांगा, धर्मप्राणा पतिव्रता।।11।।

तावुभौ सततं प्रीत्या, दानपूजादितत्परौ।
तीर्थयात्राादिसत्कार्येऽर्थं कुर्वातेस्म धनव्ययं।।12।।

आचार्य श्री वीरसागर शतक
(हिन्दी अनुवाद)

-गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी

भव्यों के हृदय-कमलों को विकसित करने में सूर्य के समान, सर्वसिद्धि को प्रदान करने वाले, सिद्धार्थ महाराज के पुत्र श्री वीर भगवान को मैं भक्तिपूर्वक नित्य ही नमस्कार करता हूँ। सर्व भाषामयी होकर भी जो अनक्षरी है, ऐसी जिनवाणी की मैं वंदना करता हूँ कि जिसके प्रसाद से मेरी वाणी स्व और पर को आल्हाद करने वाली होवे। सर्व विघ्नों को दूर करने वाले आचार्य, उपाध्याय और साधु उन-उनके गुणों की प्राप्ति के लिए मैं भक्तिपूर्वक सतत उन सभी की वंदना करता हूँ। इस कलिकाल में चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज मुनिधर्म के प्रवर्तक हुए हैं, उनको मन, वचन, काय की शुद्धि से मेरा 'नमोऽस्तु' होवे। जिनके चरण-कमलों का आश्रय लेकर भव्यों ने संसार-समुद्र से पार होने के लिए चारित्र को धारण किया है, वे आचार्यवर्य हम लोगों की रक्षा करें।।1-5।।

आचार्यश्री वीरसागर जी को नमस्कार करके उनकी भक्ति से प्रेरित हुई मैं उनके पवित्र जीवन को किंचित् शब्दों में कहती हूँ।।6।।

महाराष्ट्र प्रांत में एक औरंगाबाद शहर है। उस औरंगाबाद जिले में सर्व सुखों की खान, मनोहर 'वीर' नाम का एक गाँव है। वहाँ पर पुण्यरूपी लक्ष्मी का स्थान ऐसा जिनमंदिर है, जो कि अपने ऊँचे शिखरों से स्वर्गधाम को मानो स्पर्श करता हुआ ही शोभित हो रहा है। वहाँ पर सभी गृहस्थ धन-धान्य से परिपूर्ण, सुख-शांति के इच्छुक और धर्मकार्यों में तत्पर हुए हर्षपूर्वक निवास करते थे। खंडेलवाल जाति में उत्पन्न श्रावकों में प्रधान कोई सेठ थे, जिनका नाम 'रामसुख' था वे जैन धर्म को पालते थे। 'भागूबाई' नाम की उनकी पतिव्रता पत्नी थी, जो कि मधुरभाषिणी थीं, गुण और शील से जिनका शरीर पवित्र था और जो धर्म को प्राण समझती थीं। ये दोनों दम्पत्ति हमेशा ही प्रीतिपूर्वक दान और पूजा आदि करते थे तथा हित की प्राप्ति के लिए तीर्थयात्रा आदि धर्मकार्यों में ही धन का व्यय करते थे।।7-12।।

शुभकाले तयोर्जातं, पुत्ररत्नं मनोहरम्।
गुलाबचंद्रनामासौ, यशःसौगंध्यमातनोत्।।13।।

दिवसैः कतिभिः कांता, पुण्य-सौभाग्यशालिनी।
सुस्वप्नपूर्वकं पुत्र-रत्नं प्रासूत सापरं।।14।।

द्वितीयोऽप्यद्वितीयोऽयं, भव्यबंधुर्जगद्गुरुः।
स्वजातौ हीरकं नूनं, हीरालालाख्यविश्रुतः।।15।।

त्रित्रिनवैकमानेऽब्दे[1], विक्रमे शुभसत्तमे।
आषाढ़ सितपूर्णायां, पूर्णचन्द्र इवाभवत्।।16।।

गंगवालसुगोत्रस्य, भूषणो विश्वभूषणः।
शिशुचन्द्रः सदा पित्रोः, प्रमोदाब्धिमवर्धयत्।।17।।

अष्टवर्षवयःप्राप्ते, श्रेष्ठिना सुमुहूर्तके।
उपनीतिसंस्कारेण, संस्कारितः सुधीः सुतः।।18।।

सद्विद्याध्ययनं कुर्वन्, अचिरेण कुशाग्रधीः।
अधीत्य गृहमागत्य, व्यापारमकरोत् पुनः।।19।।

युवावस्थां विलोक्यास्य, विवाहार्थं पितुर्मनः।
उत्सुकतां व्यधात् तर्हि, न्यषेधयत् विरक्तधीः।।20।।

कचनेराख्यक्षेत्रेऽसौ, पाठशालां सुधार्मिकीं।
प्रीत्योदघाटयत् तत्र, बालान् धर्ममपाठयत्।।21।।

पुनर्विद्यालयं कृत्वाप्यौरंगाबादपत्तने।
केवलज्ञानसंप्राप्त्यै, सम्यग्ज्ञानमशिक्षयत्।।22।।

अष्ट सप्तनवैकाख्ये[2] विक्रमाब्दे शुभे दिने।
आषाढ़सितैकादश्यां, पन्नालालार्यसन्निधौ[3]।।23।।

अग्रहीत् ब्रह्मचर्याख्यं, सप्तमी प्रतिमाव्रतं।
चर्यां ब्रह्मणि कर्तुं सः, स्वाध्याये तत्परोऽभवत्।।24।।

खुशालचन्द्र नामैको, नांदग्रामस्थ श्रावकः।
सप्तमी प्रतिमां तस्मै, दत्वा मार्गं व्यवर्धयत्।।25।।

कोन्नूरग्राममासाद्य, सूरिं श्रीशान्तिसागरं।
नत्वा भक्त्या महाधीरौ, तौ दीक्षायै समुद्यतौ।।26।।

---

1. वि.सं. 1933। 2. वि.सं. 1978। 3. ऐलक पन्नालाल जी।

शुभ दिन में भागूबाई ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका नाम 'गुलाबचन्द्र' रखा गया। उसने अपनी यशरूपी सुगंधि को सर्वत्र फैलाया पुनः कुछ दिनों बाद उस पुण्यवती सौभाग्यशालिनी महिला ने अच्छे-अच्छे स्वप्न देखे और द्वितीय पुत्ररत्न को जन्म दिया। वह पुत्र द्वितीय होकर भी अद्वितीय था। वह भव्यों का बन्धु और जगत् का गुरु हुआ। वह अपनी जाति में निश्चित ही हीरा होने से 'हीरालाल' इस नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् उन्नीस सौ तेंतीस में आषाढ़ सुदी पूर्णिमा के दिन पूर्ण चन्द्र के समान इस पुत्र ने जन्म लिया था। यह गंगवाल गोत्र का भूषण तथा विश्व के लिए भूषण ऐसा शिशुरूपी चन्द्रमा सदैव अपने माता-पिता के प्रमोदरूपी समुद्र को बढ़ाता था।।13-17।।

आठ वर्ष की उम्र होने पर सेठ रामसुख जी ने अच्छे मुहूर्त में उस बुद्धिमान बालक को उपनयन संस्कार से संस्कारित कर दिया। समीचीन विद्या का अध्ययन करते हुए वह बालक कुशाग्र बुद्धि होने से शीघ्र विद्या पढ़कर घर आकर पुनः व्यापार करने लगा। कुछ दिन बाद हीरालाल की युवावस्था देखकर पिता का मन उसके विवाह करने के लिए उत्सुक हो उठा, तब विरक्त बुद्धि हीरालाल जी ने इंकार कर दिया।।18-20।।

अनन्तर कचनेर नामक अतिशय क्षेत्र में उन्होंने धार्मिक पाठशाला खोली, जहाँ पर प्रेम से बालकों को धर्म पढ़ाने लगे पुनः औरंगाबाद शहर में विद्यालय खोलकर केवलज्ञान की प्राप्ति हेतु वहाँ पर सम्यग्ज्ञान की शिक्षा देने लगे। अनन्तर विक्रम संवत् 1978 में शुभ-दिवस आषाढ़ सुदी एकादशी को ऐलक श्री पन्नालाल जी के पास में उन्होंने अपनी ब्रह्मस्वरूप आत्मा में चर्या करने हेतु ब्रह्मचर्य नाम की सातवीं प्रतिमा के व्रत ले लिए और स्वाध्याय में लीन रहने लगे।

नांदगांव के निवासी के एक श्रावक 'खुशालचन्द्र' नाम से प्रसिद्ध थे, उन्हें ब्र. हीरालाल जी ने सातवीं प्रतिमा के व्रत देकर मोक्षमार्ग को वृद्धिंगत किया।।21-25।।

पुनः कोन्नूर ग्राम में पहुँचकर वहाँ आचार्यश्री शान्तिसागर जी को भक्ति से नमस्कार करके ये दोनों ब्रह्मचारी बहुत ही प्रसन्न हुए और उनके पास दीक्षा लेने के लिए उद्यत हो गए। विक्रम संवत् 1980 में फाल्गुन सुदी सप्तमी के दिन

खाष्ट नवैकमानेऽब्दे[1], विक्रमे फाल्गुने सिते।
सप्तम्यां च तिथौ द्वाप्यधातां क्षुल्लकव्रतं।।27।।
हीरालालः प्रसिद्धोऽभूत्, वीरसागरनामतः।
चन्द्रसागरनाम्ना च, द्वितीयो जगतीतले।।28।।
षण्मासानंतरं शुक्ले, चाश्विनैकादशी तिथौ।
श्रीवीरसागरो दीक्षां, जिनरूपामशिश्रियत्।।29।।
स्वगुरोः प्रथमः शिष्यः, प्रमुखः प्रथितो भुवि।
विहरन् गुरुभिः सार्धं, विलसद् गुणसागरः।।30।।
अष्टाविंशति विद्यातान्, स्वेषां मूलगुणान्मुनिः।
पालयंश्च यथाशक्तिः, श्रेष्ठोत्तरगुणानपि।।31।।
श्री सम्मेदोर्जयंतादि, नानातीर्थ स्थलान्यपि।
वंदित्वा भक्तिभावेन, दृग्विशुद्धिं व्यवर्धयत्।।32।।
द्वादशवर्षपर्यन्तं, गुरोश्चरणसन्निधौ।
भक्त्या सेवां प्रकुर्वाणो, महत् वैशिष्ट्यमाप्तवान्।।33।।
आचार्याज्ञानुसारेण, धर्मप्रभावनाकृते।
सः पृथक् व्यहरत् सार्धं, आदिसागरसाधुना।।34।।
विहरन् गुर्जरप्रान्त, ईडरे पुटभेदने।
वर्षायोगं विधायासौ, भव्यजीवानबोधयत्।।35।।
ततः चिरं मुनीन्द्रोऽसौ, विहरन् मरुभूःस्थले।
शुष्क भव्यौघसस्यानि, सिंचतिस्म वचोऽमृतैः।।36।।
तत्र तस्य प्रसादेन, भव्यानां पुण्ययोगतः।
धर्मवृष्टिर्यथाजाता, मेघवृष्ट्यस्तथाऽभवन्।।37।।
मुमुक्षून् वीक्ष्य भव्यांस्तान्, दीक्षादानैरतर्पयत्।
अभवन् मुनयः केचित्, केचित् जाताश्च क्षुल्लकाः।।38।।
गृहस्था धार्मिका जाताः, धार्मिकाः ब्रह्मचारिणः।
तितीर्षवो भवाब्धेस्तं, कर्णधारमिवाश्रिताः।।39।।
नार्योऽपि गुरुपादाब्जं, श्रित्वा स्त्रीलिंगहानये।
आर्यिकाव्रतमासेदुः, काश्चित् जाताश्च क्षुल्लिकाः।।40।।
काश्चिच्च ब्रह्मचारिण्यः, गृहिण्यो धर्मतत्पराः।
जगत्पूज्या जगन्माते-तीहि काचिच्च विश्रुता।।41।।

1. वि.सं. 1980।

आचार्यश्री से इन दोनों ने क्षुल्लक व्रत ग्रहण कर लिए। ब्रह्मचारी हीरालाल जी **'श्री वीरसागर'** नाम से प्रसिद्ध हुए और ब्रह्मचारी खुशालचन्द्र **'श्री चन्द्रसागर'** नाम से इस पृथ्वी तल पर प्रसिद्ध हुए हैं।।26-28।।

पुनः छह मास के अनन्तर ही वि.सं. 1981 में आश्विन सुदी एकादशी के दिन श्री वीरसागर क्षुल्लक ने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। इस पृथ्वी तल पर वे गुरु के प्रथम और प्रमुख शिष्य प्रसिद्ध हुए हैं। ये मुनि प्रसिद्ध ऐसे अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हुए यथाशक्ति उत्तम-उत्तम उत्तरगुणों का भी पालन करते थे। गुरु वे साथ ही सम्मेदशिखर,गिरनार आदि अनेक तीर्थों की भक्तिभाव से वंदना करके इन्होंने अपने सम्यग्दर्शन को अत्यन्त निर्मल बना लिया था। इस प्रकार बारह वर्षपर्यंत गुरु के चरणसानिध्य में रहकर भक्ति से उनकी उपासना करते हुए, इन्होंने महानविशेषता को प्राप्त कर लिया था पुनः आचार्यश्री की आज्ञा के अनुसार धर्मप्रभावना के हेतु इन्होंने आदिसागर मुनि के साथ संघ से पृथक् विहार किया। सबसे प्रथम गुजरात प्रांत में ईडर नामक शहर में वर्षायोग करके वहाँ के तमाम भव्यजीवों को बोध प्राप्त कराया।।29-35।।

अनंतर मुनियों में श्रेष्ठ वीरसागर मुनिराज विहार करते-करते मरुभूमि में आए और वहाँ पर सूखी हुई भव्यजीवरूपी खेती को अपने धर्मोपदेश- रूपी अमृत से सिंचित किया। उस मारवाड़ में भव्यों के पुण्ययोग से जहाँ-जहाँ पर गुरुदेव का विहार हुआ, वहाँ-वहाँ पर धर्मामृत वर्षा के साथ-साथ ही हर्ष से ही मानो मेघ भी बरसता रहता था। गुरुदेव ने बहुत से भव्यजीवों को मुक्ति के इच्छुक जानकर उन्हें दीक्षा देकर तृप्त किया। उनमें से कोई-कोई तो उन्हीं के समान अर्थात् मुनि बन गए और कोई-कोई क्षुल्लक हो गए। कोई ब्रह्मचारी हो गये और कोई-कोई गृहस्थ धर्मनिष्ठ श्रावक हो गए, जिन्होंने कि भवसमुद्र से पार होने के इच्छुक होते हुए कर्णधार के समान उन गुरु का आश्रय ले लिया। महिलाओं ने भी स्त्रीलिंग का नाश करने के लिए गुरुदेव के चरण-कमल का आश्रय लेकर आर्यिका के व्रतों को ग्रहण कर लिया और कोई-कोई क्षुल्लिका हो गईं। कई महिलाएँ ब्रह्मचारिणी हो गईं और कोई गृहस्थी में रहते हुए भी धर्म में तत्पर श्राविकाएँ हो गईं तथा कोई-कोई आर्यिकाएँ 'जगत्पूज्या', 'जगन्माता' इस प्रकार से इस पृथ्वीतल पर प्रसिद्धि को प्राप्त हुई हैं।।36-41।।

तेषां शिष्या गुरोर्भक्त्या, विद्वांसः सदृढ़वृताः।
विदुष्यो दृढ़चारित्रा, ख्याता गुरुप्रसादतः।।42।।
शिवाब्धिर्धर्मसिन्धुश्च, पद्मसिन्धुर्जयाम्बुधिः।
सन्मत्यब्धिः श्रुताब्धिश्चेत्याद्या ये सागरा इव।।43।।
साधवोऽप्यार्यिकास्ताश्च, वीरमत्यादयस्त्विह।
विदुष्यो ज्ञानमत्याद्या, कीर्त्या या भुवि विश्रुताः।।44।। युग्मं
क्षुल्लकाः सिद्धसिंध्वाद्याः, धर्मस्वाध्यायतत्पराः।
वर्णिनः सूर्यमल्लाद्याः, प्रतिष्ठादिविशारदाः।।45।।
एकदा विहरन् जातश्चमत्कारो मरुस्थलं।
नागौर नाम ग्रामे स्यात्, वर्षायोगो गुरोर्यदा।।46।।
अनावृष्टिरभूत्तत्र, त्राहि त्राह्यभवत्तदा।
मिथ्यादृष्टिजना आहुरर्हद्धर्मस्य निन्दकाः।।47।।
इमे नग्नाः समायाता, कर्महीनादिगम्बराः।
क्रियाकांडमजानंता, अतो देवो न वर्षति।।48।। युग्मं
श्रीवीरसागरस्तेषां, वचः श्रुत्वा विलोक्य च।
दुष्कालेन जनांस्त्रस्तान्, करुणाद्रोऽभवत्ततः।।49।।
प्रातर्गत्वा बहिर्भूमि, निवृत्तसमये गुरुः।
स्थित्वा शुष्कनदीमध्ये, व्युत्सर्गमकरोत्तदा।।50।।
तस्मिन्नेव दिने सायं, मेघच्छन्नो नभोऽभवत्।
विद्युत् विद्योतिता भीमै-र्गर्जद्वृष्टिः पपात च।।51।।
मूसलाधारवर्षाभिः, हृष्टा भूरंकुरान् दधौ।
कुदृशश्च गुरोर्भक्तिं, तृप्तिं च भाक्तिका ययुः।।52।।
एतादृशश्चमत्कारा, अन्येऽप्यस्य प्रभावतः।
यत्र यत्राव्रजत् स्वामी, तत्र तत्राभवत् सदा।।53।।
एकदा गुरुवर्यस्य, पृष्ठे स्फोटिकोऽभवत्।
नालिकेरसदृक् भीमः, किं नु मृत्युसहोदरः।।54।।
'अदीठ' इति देशीय-भाषयासाध्य एव रुक्।
कथमस्य प्रतीकारो, भक्ताश्चिंतां समाश्रयन्।।55।।

उन आचार्यश्री के शिष्य गुरुभक्ति के प्रभाव से विद्वान् और दृढ़चारित्रधारी हुए हैं तथा गुरुदेव के प्रसाद से कितनी ही महिलाएँ विदुषी एवं दृढ़-चारित्रधारिणी प्रसिद्ध हुई हैं। शिवसागर, धर्मसागर, पद्मसागर, जयसागर, सन्मतिसागर और श्रुतसागर आदि मुनि सागर के समान हुए हैं तथा वीरमती आदि एवं ज्ञानमती आदि विदुषी आर्यिकाएँ भी कीर्ति से इस जगत् में प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। धर्म और स्वाध्याय में तत्पर सिद्धसागर आदि क्षुल्लक तथा प्रतिष्ठा आदि कराने में विशारद सूर्यमल ब्रह्मचारी आदि भी प्रसिद्ध हैं।।42-45।।

एक समय गुरुदेव का संघ के साथ मारवाड़ में विहार हुआ, वहाँ पर नागौर गाँव में चातुर्मास हुआ। उस समय वहाँ वर्षा नहीं हुई, तब जनता में 'त्राहि-त्राहि' मच गई। तब मिथ्यादृष्टि लोग धर्म से द्वेष रखते हुए कहने लगे कि ये कर्महीन दिगम्बर वेषधारी नंगे साधु आए हुए हैं, ये क्रियाकांड को नहीं जानते हैं, अतएव इन्द्र महाराज नहीं बरसते हैं। श्री वीरसागर उनके वचनों को सुनकर और दुष्काल से त्रस्त हुई जनता को देखकर करुणा से द्रवित हो गए पुनः प्रातःकाल दीर्घशंका के लिए बाहर जंगल में जाकर जब वापस आ रहे थे, तब गुरुवर्य ने सूखी नदी के बीच में खड़े होकर कायोत्सर्ग किया और वापस आ गए। उसी दिन सायंकाल में आकाश में मेघ छा गए, बिजली चमकने लगी और भयंकर गर्जना करते हुए बादल बरसने लगे। मूसलाधार जल की वर्षा से पृथ्वी ने हर्षित होकर मानो अंकुरों को धारण कर लिया तथा मिथ्यादृष्टिजन गुरु के प्रति भक्ति को प्राप्त हुए एवं भाक्तिक श्रावक तृप्ति को प्राप्त हुए। जहाँ-जहाँ गुरुदेव गए हैं, वहाँ-वहाँ पर ऐसे बहुत से चमत्कार हमेशा धर्म के प्रभाव से हुए हैं।।46-53।।

एक समय गुरुदेव की पीठ में फोड़ा हो गया, वह नारियल के समान बड़ा और भयंकर था। ऐसा लगता था मानों वह मृत्यु का सहोदर ही है। जिसको देशी भाषा में 'अदीठ' कहते हैं, ऐसा यह रोग असाध्य ही था। इसका इलाज कैसे हो? इस प्रकार से भक्तजनों को चिंता हो गई। यद्यपि उसकी वेदना अत्यधिक थी, तो भी अहो! आश्चर्य ही था कि महामुनिराज अपनी आवश्यक क्रियाओं को पूर्ण-रूप से कर रहे थे। अनेक वैद्य-डॉक्टरों ने ऐसा कहा कि इस समय यह रोग सचमुच में गुरुदेव के प्राण ही ले लेवेगा, ऐसा दिखता है। जब एक

यद्यपि वेदनात्यर्थं, मुनिश्रेष्ठः तथाप्ययं।
आवश्यक क्रियां सर्वा-मन्यूनामकरोदहो।।56।।

नानाभिषग्वरैः प्रोक्तं, गुरुवर्यस्य सांप्रतं।
सत्यमेव त्वियं व्याधिः, प्राणानेव ग्रहीष्यति।।57।।

यदा शल्यचिकित्सां हि, वैद्यस्तु व्यतनोत् तदा।
गुणस्थाने स्वयं धीरः, प्रकृतेर्गणनां व्यधात्।।58।।

कर्मबंधोदयादीनां, गणितेषु निमज्जति।
सति चित्ते तदानीं खल्वार्त्या खिन्नोऽभवन्न सः।।59।।

विपाकविचयं ध्यानं, ध्यायत्येव तत्क्षणात्।
तस्यासातं विपच्यान्तः, पूयरूपेण निर्गतं।।60।।

एतद्दृश्यं जना दृष्ट्वा, कथितं विस्मयावहं।
धन्योऽसि गुरुवर्यत्वं, जीयास्त्वं भोः चिरं भुवि।।61।।

महाव्याध्यापि त्रस्तः सन्, मुखम्लानमकुर्वता।
त्वयासह्यत भोः धीर, धीराणामग्रणीर्गुरो!।।62।।

नाम्ना नैव गुणे नापि, त्वं सत्यं वीरसागरः।
समुद्र इव गम्भीरो, गुणरत्नाकरो महान्।।63।।

इत्यादिवचनालापैः, प्रशंसंतिस्म भाक्तिकाः।
श्रद्धानं च गुरोर्भक्त्या, कुर्वन् गाढं जिनागमे।।64।।

पश्यास्मिन् पंचमे काले, हीनसंहननेप्यहो।
वीरचर्यां चरंती मे, बिभ्यति नो परीषहात्।।65।।

धारयंति त्विमान् तस्मात्, धरा धन्या सुरैर्नुता।
रत्नगर्भापि ख्यातैदृक्, रत्नानि च प्रसूत्य वै।।66।।

परीषहोपसर्गादीन्, सोढ्वान्यानपि धैर्यतः।
गुरुदेवः स्वशिष्याणां, हृत्कमले व्यराजत।।67।।

स्वदेहेनिःस्पृहोप्येवं, स्वात्मन्येव च सस्पृहः।
विषयादीन् द्विषंश्चापि, स्वात्मतत्त्वेऽनुरक्तवान्।।68।।

सनक्षत्रः शशीवासौ, शिष्येषु शुशुभेतरां।
शिक्षयन्नार्ष शिक्षां तान्, जन्मरोगाद् विषण्णधीः।।69।।

डॉक्टर ने उस फोड़े का ऑप्रेशन किया, उस समय गुरुदेव गुणस्थानों में प्रकृतियों की गिनती कर रहे थे। कर्मों का बंध, उदय, सत्त्व और उनकी व्युच्छित्ति आदि की गणित में अपने मन को निमग्न कर लेने पर सचमुच में वे महामुनि पीड़ा से किंचित् भी खिन्न नहीं हुए थे। विपाकविचय धर्मध्यान को ध्याते हुए गुरुदेव के तत्क्षण ही असाता कर्म उदय में आकर भीतर से पीपरूप में ही मानो निकल गया था।।54-60।।

सभी लोग इस दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित होकर कहने लगे कि हे गुरुवर्य! आप धन्य हो, आप चिरकाल तक इस पृथ्वी तल पर जीवित रहो। हे धीर पुरुषों में अग्रणी धीर वीर गुरुदेव! महान रोग से पीड़ित होते हुए भी आपने मुख को मलिन न करते हुए इस कष्ट को सहन कर लिया है। आप नाम से ही नहीं, किन्तु गुणों से भी '**वीरसागर**' इस सार्थक नाम के धारक हैं, आप समुद्र के समान गंभीर हैं और महान गुणरूपी रत्नों के समुद्र हैं, इत्यादि वचनों के द्वारा भाक्तिकजनों ने गुरुदेव की प्रशंसा की और भक्तिपूर्वक गुरु के प्रति श्रद्धान करते हुए जिनागम में भी गाढ़ श्रद्धान को बनाया अर्थात् शास्त्र में लिखा है कि पंचमकाल के अंत तक सच्चे मुनि होंगे, सो उनकी श्रद्धा अतिशय दृढ़ हो गई।।61-64।।

देखो! इस पंचमकाल में हीन संहनन के होने पर भी आश्चर्य है कि ये मुनिगण वीरचर्या का आचरण करते हैं तथा परीषहों से नहीं डरते हैं। यह पृथ्वी इन साधुओं को धारण करती है अतः धन्य हो गई और देवों के द्वारा भी पूज्य हो गई है तथा ऐसे-ऐसे रत्नों को जन्म देकर यह '**रत्नगर्भा**' इस सार्थक नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त है। गुरुदेव श्री वीरसागर अपने जीवन में अन्य-अन्य और भी परीषहों तथा उपसर्गों को सहन करके अपने शिष्यों के हृदय कमल में विराजमान हो रहे हैं। ये अपने शरीर से निःस्पृह होते हुए अपनी आत्मा में स्पृहा अर्थात् इच्छा सहित ही हैं तथा विषय-कषायों से द्वेष करते हुए भी अपने आत्मतत्त्व में अनुरागी हैं। नक्षत्रों से वेष्टित चन्द्रमा के समान गुरुदेव अपने शिष्यसमुदाय के मध्य उन्हें आर्षमार्ग की शिक्षा को देते हुए अतिशयरूप से शोभते थे। वे जन्म रोग से उदास बुद्धि थे।।65-69।।

केचित् शिष्याः कदाप्याहुः, पीडां गुरुं सन्निधौ।
आकर्ण्य सान्त्वयन् तेभ्योऽवोचत् प्रेम्णैव संस्मितः।।70।।
मम द्वावैव रोगौ स्तः, क्षुन्निद्रे किं करोम्यहं।
एतच्छ्रुत्वा च ते शिष्याः, स्वदुःखं व्यस्मरंस्तदा।।71।। युग्मं
सूत्ररूपेण तद्वाणी-माकर्ण्याचाचारसंयुतां।
मार्गस्था बहवो भव्या, जाता गुरुप्रसादतः।।72।।
नेता विशालसंघस्य, किंतु स्वं गणयन् लघुः।
अभवत् गुणभारेण, सर्वमध्ये गुरुर्गुरुः।।73।।
अमंदां स्वगुरोर्भक्तिं, वितन्वानः सदा मुनिः।
सर्वतो योग्यतां बिभ्रत्, सर्वेषामभवत् गुरुः।।74।।
सल्लेखनामधात् सूरिर्यदा श्रीशांतिसागरः।
तदा चिंतां गता जैनाः, धुरं को धारयिष्यति।।75।।
द्व्येकशून्यद्विमानेब्दे, विक्रमे सप्तमी तिथौ।
आद्ये भाद्रपदे शुक्ले, सूरिवर्योऽब्रवीत् जनान्।।76।।
स्वस्याचार्यपदं स्वस्मै, वीरसागर साधवे।
अहं ददामि किंचासौ, योग्यो धर्मधुरं प्रति।।77।। युग्मं
एवं स्वशिष्यमुख्याभ्यां, आज्ञापत्रमलेखयत्।
गेंदमलचंदूलाल, नामभ्यां धर्महेतवे।।78।।
श्रीवीरसागरस्यासीत्, वर्षायोगस्तदोत्तरे।
प्रान्ते चतुर्विधैः संघैर्जयपुर्यां महत्पुरि।।79।।
गुर्वाज्ञापत्रमादाय, इंद्रलालाख्यशास्त्रिणा।
सभामध्ये गुरोरग्रे, तल्लेखं वाचितं मुदा।।80।।
इतः प्रभृति सर्वेषां, सूरिः स्यात् वीरसागरः।
मत्वेति धार्मिकैरस्य, ह्याज्ञा शिरसि धार्यताम्।।81।।
सर्वेषु धर्मकार्येषु, नेतायं वो धुरंधरः।
आर्षमार्गविधेर्वेत्ता, चतुःसंघस्य नायकः।।82।।
प्रमाणीकृत्य तद्वाक्यं, गुर्वाज्ञालोपभीरवः।
रक्ष्यतां भो बुधा नित्यं, मोक्षमार्ग परंपरा।।83।।
श्रुत्वेति भाक्तिकाः सर्वे, हर्षैरोमांकुरान् दधुः।
जयकाररवा उच्चै-जनतास्याद् विनिर्ययुः।।84।।

यदि कदाचित् कोई शिष्य गुरुदेव के सामने अपने कष्ट को कहते थे तो गुरुदेव उसे सुनकर उन्हें सान्त्वना देते हुए पुनः मुस्कुराकर बड़े प्रेम से बोलते थे कि मुझे तो दो ही रोग हैं–एक भूख लगती है और दूसरे निद्रा आती है, मैं क्या करूँ? गुरुदेव के ऐसे वचन सुनकर वे शिष्य उस समय अपने दुःखों को भूल जाते थे।।70-71।।

सूत्ररूप से हुई आचार सहित उनकी वाणी को सुनकर बहुत से भव्य जीव गुरुदेव के प्रसाद से मोक्षमार्ग में लग चुके हैं। वे गुरुदेव विशाल संघ के नेता थे किन्तु फिर भी अपने आपको छोटा समझते हुए गुणों के भार से ही सभी के मध्य महान गुरु हो गये थे। अपने गुरु के प्रति हमेशा अपनी भक्ति को विस्तृत करते हुए वे मुनिराज सर्वांगीण योग्यता को धारण करते हुए सभी के गुरु हो गये थे।।72-74।।

जब आचार्य श्री शांतिसागर महाराज ने सल्लेखना ग्रहण कर ली उस समय सभी श्रावक लोग चिंता को प्राप्त हो गये कि अब इस धर्म की धुरा को कौन धारण करेगा? विक्रम संवत् 2012 में प्रथम भाद्रपद शुक्ला सप्तमी के दिन आचार्यश्री ने लोगों से कहा कि मैं अपना आचार्यपद अपने शिष्य वीरसागर को देता हूँ क्योंकि वे ही इस धर्म की धुरा को धारण करने के लिए योग्य हैं। इस प्रकार उन्होंने अपने प्रमुख शिष्य गेंदमल और चंदूलाल श्रावक के द्वारा धर्मसंतति चलाने के लिए आज्ञा-पत्र लिखवाया। उस समय श्री वीरसागर मुनिराज का चतुर्विध संघ के साथ उत्तर भारत के जयपुर नामक महानगर में वर्षायोग हो रहा था।।75-79।।

श्री इन्द्रलाल शास्त्री ने गुरुदेव का आज्ञा-पत्र लेकर विशाल सभा के मध्य गुरु के सामने हर्षपूर्वक वह पत्र पढ़ा-''**आज से लेकर सभी लोगों के आचार्य 'वीरसागर' हैं, ऐसा समझकर सभी धार्मिक लोग इनकी आज्ञा को सिर से धारण करो। सभी धर्मकार्यों में आप लोगों के ये धर्म की धुरा को धारण करने वाले नेता हैं, आर्षमार्ग की विधि को जानने वाले हैं और चतुर्विध संघ के नायक हैं। गुरु आज्ञा लोप से भीरू हे बुद्धिमान लोगों! तुम सर्वजन इनके वचनों को प्रमाण करो और सदा मोक्षमार्ग परम्परा की रक्षा करो।**सुनकर सभी भाक्तिक लोग हर्ष से रोमांचित हो गए, सभी जनता के मुख से उच्चस्वर से जयजयकार ध्वनि निकलने लगी।।80-84।।

तदैव प्रमुखः शिष्यो, निर्ग्रन्थः शिवसागरः।
पिच्छि कुण्डिकां गुरवेऽयच्छत् श्रीसूरिप्रेषितां।।85।।

आचार्य पददानस्य, विधिं कृत्वेत्यसौ मुनिः।
आचार्याय नमोस्तूक्त्वाऽनमत् सूर्रेऽघ्रिपद्मयोः।।86।।

साधवः श्रावकाश्चापि, सर्वे हर्षभरांचिताः।
भक्तया सिद्धश्रुताचार्य-भक्तीः कृत्त्वा नमन्मुदा।।87।।

ततः प्रभृति सोऽयं नो, आचार्यो वीरसागरः।
विख्यातः किंतु प्रागस्मात्, आचार्यकल्प एव हि।।88।।

सूरेः कार्यं कृतं सर्वं, यावत्स्वगुरुशासनं।
तावत्सूरिपदं स्वस्मै, स्वीकरोति स्म नैव सः।।89।।

अष्टावाचारवत्त्वाद्यास्तपांसि द्वादशस्थितेः।
कल्पा दशावश्यकानि, षट् षट् त्रिंशद् गुणागणेः।।90।।

आचारी सूरिराधारी, व्यवहारी प्रकारकः।
आयापायदिगुत्पीड़ोऽपरिस्रावी सुखावहः।।91।।

आर्या छन्द- **आचेलक्योद्देशिक-शय्याधरराजकीयपिंडोज्झाः।**
कृतिकर्मव्रतारोपण-योग्यत्वं ज्येष्ठता प्रतिक्रमणं।।92।।

मासैकवासितास्थितकल्पो योगश्च वार्षिको दशमः।
तपआवश्यकयुक्तैर्मूलगुणाः संति गणिनश्च।।93।।

तपांसि वा द्वादशधा, दशधा धर्माश्च पंचधाचाराः।
षट्आवश्यकभेदा, गुणास्त्रिगुप्तयोऽपि षट्त्रिंशत्।।94।।

प्रियधर्मा दृढ़धर्मा, संविग्नोऽवद्यभीरु परिशुद्धौ।
ग्रहणानुग्रहसंग्रह, कुशलः सारक्षणायुक्तः।।95।।

गंभीरो दुर्धर्षो, मितवादी त्वल्पकौतुहलिकश्च।
चिरदीक्षित आर्षज्ञश्चार्याणां गणधरोऽप्येषः।।96।।

अनुष्टुप् छन्द- **दिगेकखद्विमानेऽब्दे, विक्रमे सूरि एष हि।**
जयपुरस्थखान्यायां, वर्षायोगोऽग्रहीत् तदा।।97।।

उसी समय श्री वीरसागर जी के प्रथम शिष्य निर्ग्रन्थ मुनि शिवसागर जी उठे और आचार्यश्री के द्वारा भेजे गये पिच्छी-कमण्डलु गुरुदेव श्री वीरसागर जी को प्रदान किया। आचार्यपद प्रदान की विधि को करके शिवसागर मुनि ने आचार्यदेव को 'नमोऽस्तु' कहकर उन नूतन आचार्यश्री के चरण-कमलों में नमस्कार किया। पुनः सभी साधु-साध्वी और श्रावकों ने हर्ष से पुलकित होकर भक्ति से लघु सिद्ध, श्रुत और आचार्यभक्ति पढ़कर उन्हें 'नमोऽस्तु' किया।।85-87।।

उस समय से लेकर ये वीरसागर जी हम लोगों के आचार्य प्रसिद्ध हुए हैं, किन्तु उसके पहले वे 'आचार्यकल्प' ही थे। यद्यपि इन्होंने आचार्य का सर्व ही कार्य किया था किन्तु जब तक अपने गुरु का शासन था अर्थात् जब तक श्री शांतिसागर जी आचार्य थे, तब तक श्री वीरसागर जी ने अपने लिए आचार्यपद स्वीकार नहीं किया था।।88-89।।

आचारवत्व आदि आठ, तप बारह, स्थितिकल्प दस और आवश्यक छह ऐसे आचार्य के 8+12+10+6=36 गुण होते हैं। उनमें से आचार आदि आठ गुणों से युक्त आचार्य आचारी, आधारी, व्यवहारी, प्रकारक, आयापायदिक्, उत्पीड़क, अपरिस्रावी और सुखावह कहलाते हैं तथा आचेलक्य, औद्देशिक, शय्याधर पिंडत्याग, राजकीय पिंडत्याग, कृतिकर्म, व्रतारोपणयोग्यता, ज्येष्ठता, प्रतिक्रमण, मासैक्यासिता और वार्षिकयोग ये दस स्थितिकल्प गुण हैं।[1] अनशन आदि बारह तप और समता आदि छह आवश्यक क्रियाएं ये सर्व 36 गुण होते हैं। अथवा बारह तप, दस धर्म, पांच आचार, छह आवश्यक क्रिया और तीन गुप्ति-ये छत्तीस गुण भी आचार्य के माने गये हैं।।90-94।।

ये वीरसागर आचार्य, धर्मप्रिय, दृढ़धर्मी, संवेगसहित, पापभीरू और विशुद्ध थे, शिष्यों के संग्रह में, उनके निग्रह में एवं उन पर अनुग्रह करने में कुशल थे तथा सारक्षण गुण से युक्त थे। गंभीर, प्रतापशाली, मितवादी और अल्पकौतुहली थे, चिरकाल के दीक्षित थे एवं शास्त्र के ज्ञानी थे। इन गुणों से युक्त होने से ही ये आर्यिकाओं के भी आचार्य थे।।95-96।।

विक्रम संवत् 2014 में आचार्यश्री वीरसागर जी ने जयपुर में स्थित खानिया में वर्षायोग धारण किया था। उस समय आचार्य महावीरकीर्ति महाराज भी अपने

1. इनका स्पष्टीकरण अनगार धर्मामृत आदि ग्रंथों से जानना चाहिए।

महावीरकीर्त्याचार्यः, ससंघस्तत्र चागतः।
वैयावृत्तिं गुरोर्भक्तिं, चातनोत् अतिहर्षतः।।98।।
मास्याश्विनेऽमावस्यायां, ध्याने स्थित्वा समाधितः।
स्वदेहमत्यजत्सूरिः, चतुः संघं च निर्ममः।।99।।
संघो गुरु वियोगेन, संतप्तोऽपि गुरुं स्मरन्।
अकरोत् संघरक्षार्थं, स्वसूरि शिवसागरम्।।100।।

-मालिनी छंद-

स जयतु मुनिनाथः सर्वसंघैकनाथः।
अगणित गुणसार्थो मुक्तिमार्गैकपांथः।।
नमितनरनरेन्द्रो वीरसिन्धुर्मुनीन्द्रः।
भुवि वितरतु सौख्यं ज्ञानमत्यै च सिद्धिं।।101।।

।। शं भूयात् ।।

प्रशस्ति

दिक्खपंचद्विवीराब्दे, हस्तिनागपुरे स्थले।
माघेऽसित तृतीयायां, रचनेयमपूर्यत।।1।।

आर्यिका ज्ञानमत्याख्या, प्रेरिता गुरुभक्तितः।
वीरसिंधु गुरोश्चेत-दैतिह्यं लेशतो व्यधाम्।।2।।

आचंद्रार्कं कृतिस्त्वेषा, स्थेयान्नंद्याच्च भूतले।
रत्नत्रयं समाधिं च, दद्यात् भव्याय सिद्धये।।3।।

संघ सहित वहाँ पर आए और गुरुदेव की वैयावृत्य तथा भक्ति को अति हर्षपूर्वक किया था। अनंतर आश्विन मास की अमावस्या के दिन आचार्यदेव ने ध्यान में स्थित होकर समाधिपूर्वक अपने शरीर का त्याग कर दिया एवं निर्मम होकर चतुर्विध संघ को भी छोड़ दिया। उस समय चतुर्विधसंघ ने गुरुवियोग से संतप्त होते हुए भी गुरुदेव का स्मरण करते हुए संघ की रक्षा हेतु शिवसागर मुनि को अपना आचार्य बनाया।।97-100।।

सर्वसंघ के एक नाथ ऐसे वे मुनिनाथ जयवंत होवें, जो अगणित गुणों की राशि हैं और मुक्तिमार्ग के एक पथिक हैं, जिनके चरणों में नरेन्द्र और सुरेन्द्र भी नमस्कार करते हैं, ऐसे वीरसागर मुनीन्द्र मुझ **'ज्ञानमती'** के लिए शीघ्र ही स्वात्मसौख्य प्रदान करें।।101।।

।। इति शं भूयात् ।।

प्रशस्ति

हस्तिनापुर क्षेत्र में वीर निर्वाण संवत् 2504, माघ कृष्णा तृतीया के दिन यह रचना पूर्ण हुई है। **'ज्ञानमती'** नाम की मुझ आर्यिका ने गुरुभक्ति से प्रेरित होकर श्री वीरसागर गुरुदेव का यह चरित्र संक्षेप में बनाया है। जब तक इस जगत में सूर्य और चंद्र विद्यमान रहेंगे, तब तक यह कृति भी इस भूतल पर स्थित रहे और वृद्धि को प्राप्त होवे तथा भव्य जीवों को सिद्धि के लिए रत्नत्रय और समाधि को प्रदान करे।।1-2-3।।

आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज — एक स्वर्णिम व्यक्तित्त्व

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

ओह! कितना सुन्दर स्वप्न! प्रातःकाल की मधुरिम बेला में स्वप्निल निद्रा से उठककर भाग्यवती ने प्रभु का स्मरण किया।

रात्रि के पिछले प्रहर में देखा हुआ स्वप्न तो शायद सत्य होता है, यही सोचती हुई भाग्यवती मन में उस स्वप्न के बारे में चिन्तन करती हैं कि **मैंने आज सफेद बैल देखा है। हो सकता है कोई होनहार बालक मेरे गर्भ में आने वाला हो।** हर्ष से पुलकित होकर भाग्यवती अपने दैनिक कार्यों में लग जाती हैं।

महाराष्ट्र प्रान्त के **औरंगाबाद** जिले में एक छोटे से कस्बे **ईर** नामक ग्राम में **रामसुख** नाम के एक योग्य चिकित्सक श्रेष्ठी रहा करते थे। उन्होंने **भाग्यवती** धर्मपत्नी को पाकर मानो सचमुच ही राम जैसे सुख को प्राप्त कर लिया था। गंगवाल गोत्रीय ये दम्पत्ति श्रावक कुल के शिरोमणि थे। प्रतिदिन मंदिर में जाकर देवदर्शन करना, भक्ति-पूजा आदि उनके जीवन के आवश्यक अंग थे। **माता-पिता के संस्कार बालक पर पड़ना अवश्यंभावी है।**पत्नी के सुखद स्वप्न को सुनकर रामसुख भी बड़े हषित हुए, उन्होंने स्नेह से पत्नी की ओर देखते हुए कहा–

भागू! ऐसा लगता है तुम एक होनहार महापुरुष बालक की माँ बनने वाली हो। हो सकता है संसार में तेरे मातृत्व की ख्याति फैलाकर यह बालक श्वेत वृषभ के सदृश कीर्ति वाला बन जावे।

भाग्यवती लज्जापूर्वक सिर झुकाकर पति के चरण स्पर्श करती है और अपने प्रथम पुत्र तीन वर्षीय बालक गुलाबचंद को साथ लेकर मंदिर में भगवान की पूजन करने चली जाती है। खुशियों के आवेग में भाग्यवती अपनी सारी सुध-बुध भूल गईं। देर दिन चढ़ने तक वह प्रभु की भक्ति में ही लीन रहीं, तब ध्यान तोड़ा गुलाब ने। **माँ! घर चलो, बहुत देर हो गई, मुझे भूख लगी है।** भक्ति का आनंद वहीं छोड़कर भागू बेटे के साथ घर आ गई।

दिवस और रात्रि के स्वर्णिम क्षण बीतने लगे। अब तो भाग्यवती प्रतिदिन पति से तीर्थयात्रा पर चलने को कहने लगीं क्योंकि इस द्वितीय पुत्र के गर्भ में आने से उसे तीर्थवंदना का दोहला जो हुआ था। रामसुख अपनी पत्नी को तीर्थों की वंदनाहेतु लेकर चल दिए। हर्ष और आनंद के साथ दोनों ने सिद्धक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र आदि कितने

ही तीर्थों की वंदना की और वापस घर आ गए।

देखते ही देखते नवमास हर्षोल्लास में व्यतीत हो गए। वि. सं. 1933, ईसवी सन् 1876 में आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन भाग्यवती ने एक अपूर्व चाँद को जन्म दिया जिसके आगमन की अप्रतिम प्रसन्नता ने माता की प्रसव वेदना भी समाप्त कर दी।

सारे गाँव में बाजे-नगाड़े की ध्वनि होने लगी। चारों ओर खुशियाँ ही खुशियाँ छाई हुई थीं। सौभाग्यवती महिलाएँ मंगल गीत गा रही थीं। पुत्र जन्मोत्सव की खुशी में सेठ रामसुख जी फूले नहीं समा रहे थे। हर्षातिरेक में गरीबों को खूब दान बाँट रहे थे।

इस होनहार बालक का नाम घर वालों ने मिलकर हीरालाल रखा। सवा महीने के बाद जब माता और बालक को लेकर सभी नगर निवासी जिनमंदिर गए, तब वहाँ भगवान के समक्ष जैनसंस्कृति के अनुसार एक पण्डितजी ने बालक के कानों में णमोकार मंत्र सुनाकर सर्वसाक्षीपूर्वक अष्टमूलगुण धारण करवाया तथा 8 वर्ष तक इन मूलगुणों को पालन करवाने की जिम्मेदारी माता पर डाली। बार-बार आँखें खोलकर हीरा मानों कह रहा था कि मैं सब कुछ समझ रहा हूँ।

चंद्रमा की कलाओं के समान हीरालाल भी अपनी बालक्रीडाओं को करता हुआ वृद्धिंगत होने लगा। इस घर में मानो कोई साधारण पुत्र नहीं, अपितु किसी अद्वितीय पुरुष का अवतार ही हुआ है। माता-पिता इसके जन्म से अपने को धन्य समझने लगे और अपना अधिक से अधिक समय हीरा की चमक-दमक देखने में बिताने लगे।

लोक में कहा जाता है कि जीवन में दुख के किंचित् क्षण भी अत्यन्त लम्बे लम्हे जैसे लगते हैं और सुखमय लम्बा जीवन कब जल्दी ही निकल जाता है, ज्ञात नहीं हो पाता। इसी प्रकार से बालक हीरालाल सात वर्ष के पूरे होकर आठवें वर्ष में प्रवेश कर गए। माता-पिता ने अब शुभ मुहूर्त में उपनयन संस्कार का आयोजन कराया।

इस कृतयुग की आदि में भगवान ऋषभदेव ने जब मनुष्यों को जीने की कला सिखाई थी, उस समय उपनयन आदि मनुष्योचित क्रियाओं का वर्णन भी किया था। उसी विधि के अनुसार बालक हीरालाल को मंगलचौक के ऊपर बिठाकर मंत्रन्यासपूर्वक संस्कार किए गए और तीन सूत्र का धागा गले में डाल दिया गया जो कि रत्नत्रय का प्रतीक होता है। अब वह बालक से श्रावक बन गया। अपनी समस्त क्रियाओं का पालन करते हुए हीरालाल अब पाठशाला में पढ़ने भी जाने लगा। बुद्धि की तीक्ष्णता तो थी ही, स्कूल में सभी अध्यापकों के प्रेमपात्र बन गए और लड़कों के नायक चुन लिए गए। इनके शुभ लक्षण और ज्ञान की प्रखरता देखकर अनायास ही लोग कह उठते थे कि **यह तो जरूर कोई महापुरूष होने**

वाला है। चंचलबुद्धि, मानकषाय की मंदता हीरालाल के जीवन की प्रमुख विशेषता थी।

हिन्दी, उर्दू इन दोनों भाषाओं में उन्होंने सातवीं कक्षा तक अध्ययन किया, उसके पश्चात् पिता की आज्ञानुसार व्यापार कार्य प्रारम्भ कर दिया।

हीरालाल अब तक 15 वर्ष के युवक हो गए थे। पिता के साथ व्यापार तो करते थे किन्तु इनका चित्त उदासीन रहने लगा और ये अपना अधिक समय भगवान की पूजन, भक्ति एवं शास्त्र स्वाध्याय में व्यतीत करते।

बेटे की यह उदासीनता पिता को सहन न हो पाई। यद्यपि उनको किंचित् अहसास था और लोगों के मुख से भी सुना करते थे कि हीरालाल मात्र एक घर में ही अपनी चमक को सीमित न रखकर सारे संसार को जगमगाएगा किन्तु वैराग्य के चंगुल में कहीं मेरा बेटा फंस न जाए इसलिए शीघ्र ही उसे विवाह-बंधन में बाँधने की युक्ति सोचने लगे।

सुन्दर, रूपवान और बुद्धिमान हीरालाल की शादी के रिश्ते जगह-जगह से आ रहे थे। एक दिन पिताजी ने उनसे शादी के विषय में कुछ राय लेनी चाहिए अतः हीरालाल से बोले -

बेटा! अब तुम एक होनहार नवयुवक के रूप में युवावस्था देहलीज पर खड़े हो अतः मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे घर में आने वाली बहू का चयन स्वयं करो। माँ ने भी कहा - **मुझे तो तेरे जैसी ही सुन्दर और सुघड़ बहू चाहिए। सुन हीरा! अच्छी कन्या पसंद करना जो कि मेरी कुछ सेवा भी कर सके।**

इसी प्रकार से सारे परिवार के लोग उससे रागात्मक वार्तालाप करने लगे किन्तु जैसे कमल कीचड़ में रहकर उससे सदैव अलग ही रहता है, वैसे ही हीरालाल इन सबकी बातों में संसार की असारता ढूँढते रहते थे। आखिर एक दिन पुत्र हीरा ने संकोच छोड़कर माता-पिता के सामने अपने मन की बात कह ही डाली, पिताजी के चरण स्पर्श करते हुए हीरालाल बोले–

पिताजी! आप व्यर्थ ही मेरी शादी के लिए परेशान हो रहे हैं। शादी तो संसार की अनादिकालीन श्रुत और परिचित परम्परा है मुझे तो भगवान महावीर के पथ पर चलकर अपनी आत्मा का कल्याण करना है अतः मेरा दृढ़ निश्चय है कि मुझे शादी नहीं करना है।

माता-पिता पत्थर की प्रतिमा सदृश स्तब्ध खड़े रह गए। ओह! माँ ने मौन तोड़ा **हीरा! मैंने अपनी छोटी बहू पाने के लिए न जाने कितने अरमान संजोए हैं।**

(प्यार से डाँटती हुई) एक शब्द कहकर तू हम लोगों को निराश करना चाहता है? शादी करने का कार्य तुम्हारा नहीं, यह तो माता-पिता का परम कर्तव्य होता है और आज्ञाकारी बेटा माँ-बाप की आज्ञा का सदैव पालन करना ही अपना कर्तव्य समझता है। मुझे अपने लाडले से ऐसा ही विश्वास है।

हीरालाल माँ की इतनी बड़ी चुनौती से भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा - **यह तो मोह की लीला है। माँ! वास्तव में तो न कोई किसी का पुत्र है न माता-पिता। प्रत्येक प्राणी का चैतन्य तो परम वीतरागी होता है और मुझे उसी चैतन्य की खोज करने में अपने कर्तव्य की सार्थकता प्रतीत होती है**। वे माँ से बोले–

मैं ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ अपने मन में। आपसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप मेरे द्वारा सांसारिक बहू लाने की आशा सर्वथा छोड़ दें। मैं तो मुक्तिकन्या को बहू बनाने का आह्वान कर चुका हूँ जो सदा अनंतकाल अखंड सुख को प्रदान करने वाली होती है।

मां! मुझे आशीर्वाद दो। मैं अपने पथ को निष्कंटक बना सकूँ।(झुकते हुए) पिता रामसुख दुख के असीम सागर में डूबे हुए हैं। उन्हें हीरालाल की शादी नहीं करने से अधिक दुख इस बात का है कि क्या बेटा हम सबको छोड़कर चला जाएगा?

नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। रोते हुए रामसुख जी हीरालाल को छाती से लगाते हुए कहते हैं–

मेरे चाँद! तू समझता नहीं है कि त्यागमार्ग में कितने कष्ट होते हैं। तलवार की धार पर तेरे जैसे सुकुमार का चलना श्रेयस्कर नहीं है। मेरी बात मानो बेटा! घर बसाओ और हमारे बुढ़ापे का सहारा बनो। मैं तेरा वियोग कभी नहीं सहन कर सकता हीरा।

हीरालाल अब कोई नादान नहीं थे। वे परिवार की सारी स्थिति को समझ रहे थे। अन्ततोगत्वा उन्होंने ब्रह्मचारी रूप में ही घर में रहते हुए माता-पिता की सेवा करना स्वीकार किया।

रामसुख भी अब कुछ आश्वस्त हुए कि बहू नहीं न सही, किन्तु कम से कम बेटा तो हमारे जीवन का अंग बना ही रहेगा।

घर में रहकर भी हीरा द्वारा अपनी चमक में निखार लाने हेतु रसपरित्यागपूर्वक भोजन करना एवं शास्त्रों का मनन-चिन्तन पूर्व की अपेक्षा अधिक प्रारम्भ हो गया।

दिवस, मास और वर्ष व्यतीत होने लगे। कुछ दिनों के बाद ही रामसुख जी का स्वर्गवास हो गया। पितृवियोग के साथ-साथ कतिपय दिवसों के पश्चात् ही

माता भी स्वर्ग सिधार गईं। अब हीरालाल के लिए मात्र भाई का ही संबल था।

ज्ञानी के लिए तो सबसे प्रबल संबल उसका तत्वज्ञान ही होता है, उसी का आधार लेकर हीरालाल ने अपनी मंजिल को अब निराबाध समझ लिया किन्तु योग्य गुरु के अभाव में अभी दीक्षा की भावना को बल नहीं प्रदान किया।

वि.सं. 1973, सन् 1916 में औरंगाबाद के निकट कचनेर नामक अतिशय क्षेत्र में धार्मिक पाठशाला खोलकर हीरालाल जी बालकों को निःशुल्क धार्मिक शिक्षण देने लगे पुनः औरंगाबाद में भी एक विद्यालय खोलकर उन्होंने धार्मिक अध्ययन कराया। दोनों जगह उन्होंने अवैतनिक अध्ययन कराया था और उस प्रान्त में सभी के द्वारा गुरूजी कहे जाने लगे थे। यह अध्ययनक्रम सात वर्ष तक चला जिसके मध्य निःस्वार्थ सेवाभाव से जनमानस के नस-नस में जैनधर्म का अंश भर दिया था।

वि.सं. 1978, सन् 1921 में नांदगांव में ऐलक श्री पन्नालाल जी का चातुर्मास होने वाला था। चातुर्मास के समाचार सुनकर हीरालाल गुरुदर्शन की लालसा से नांदगांव पहुंच गए। अब तो हीरालाल को अपनी स्वार्थसिद्धि का मानो स्वर्ण अवसर ही प्राप्त हुआ था अतः मौके का लाभ उठाते हुए आषाढ़ शुक्ला ग्यारस को ऐलक श्री पन्नालाल जी के पास सप्तमप्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए पुनः नांदगांव के ही एक प्रसिद्ध श्रावक खुशालचंद जी को हीरालाल ने अपना साथी बना लिया अर्थात् उनके हृदय के अंकुरित वैराग्य को बीजरूप दे दिया और उन्हें भी सप्तमप्रतिमा के व्रत दे दिए।

युगल ब्रह्मचारी की जोड़ी अब तो राम-लक्ष्मण की जोड़ी बन गई थी। दोनों ही अपने-अपने वैराग्य को वृद्धिंगत करने हेतु उपवास, रसपरित्याग आदि करने लगे जिससे प्रारम्भ से ही उनका शरीर तपस्या की बलिवेदी पर चढ़कर मजबूत बन गया था।

ब्र. हीरालाल और खुशालचंद अभी योग्य गुरु के अभाव में इससे आगे नहीं बढ़ सके थे। इसी अवस्था में उन्होंने घी, नमक, तेल और मीठे का जीवनपर्यंत के लिए त्याग कर दिया था।

सच्चे हृदय से भाई गई भावना अवश्य एक दिन भवनाशिनी सिद्ध होती है इसी प्रकार हीरालाल जी को ज्ञात हुआ कि दक्षिण के कोन्नूर ग्राम में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज नाम के दिगम्बर मुनि विराजमान हैं। बस फिर क्या था, दोनों ब्रह्मचारी शीघ्र ही आचार्यश्री के पास पहुँच गए। दर्शन-

वंदन करके आशीर्वाद प्राप्त किया। जिस प्रकार आचार्य धरसेन स्वामी के पास पुष्पदंत और भूतबलि दो शिष्य उनकी इच्छापूर्ति के लिए पहुँचे थे उसी प्रकार मानो आचार्यश्री शांतिसागर महाराज के पास युगल ब्रह्मचारी उनकी अविच्छिन्न परम्परा चलाने का भावी स्वप्न संजोकर पहुँचे थे।

गुरुवर की कठोर तपश्चर्या और त्याग की चरम सीमा को देखकर दोनों बड़े प्रभावित हुए और उन्हीं से दीक्षा लेना निश्चित कर लिया। आचार्यश्री ने दोनों भव्यात्माओं को दूरदृष्टि से परखकर दीक्षा देना तो स्वीकार कर लिया किन्तु एक बार घर जाकर परिवारजनों को सन्तुष्ट करके क्षमायाचनापूर्वक आज्ञा लेकर आने का आदेश दिया।

संसारसिंधुतारक गुरुदेव का आदेश शिरोधार्य करते हुए युगल ब्रह्मचारी अपने घर आ गए। औपचारिकरूप से सबसे क्षमायाचना करके स्वीकृति माँगी, तब बड़े भाई गुलाबचंद और उनकी पत्नी का हृदय विह्वल हो गया। यद्यपि दोनों इस बात को समझ चुके थे कि ब्रह्मा की शक्ति भी अब हीरा को घर में बाँधकर नहीं रख सकती है किन्तु मोह का प्रबल आवेग आँसुओं के सहारे फूट पड़ा। हीरालाल को उन्होंने बहुत समझाया कि **भाई! अब तुमने सप्तमप्रतिमा तो ले ही ली है, घर में रहकर अभ्यास करो। मैं तुम्हारी किसी भी चर्या में बाधक नहीं बनूँगा। हीरा! तुम मुझे अकेला छोड़कर मत जाओ।**

भाभी बार-बार देवर के चरणों का स्पर्श करती हुई विलाप करने लगी। वह बोली - **भैया! मुझ अभागिन के भाग्य से सास-ससुर की सेवा का सुख विधाता ने छीन लिया, अब आपके जाने से तो हम बिल्कुल असहाय हो रहे हैं। मैं आपकी कुछ सेवा करके अपने को भाग्यशाली समझूँगी।**

वैरागी के विरक्त मन को संसार की कोई भी रागिनी लुभा नहीं सकती है। उसी प्रकार हीरालाल पत्थर के समान कठोर बने रहे, उन्होंने समझाते हुए भाई-भाभी को कहा–

भैया! आप और भाभी तो मेरे माता-पिता के समान हैं। आप मुझे मत रोकें। देखो! इस असार संसार में हम लोगों ने कितने भवों को धारण कर दुख उठाए हैं। आर्तरौद्र ध्यानों को करके सदा अपने संसार को बढ़ाया ही है। ओह! न जाने किस पुण्योदय से यह मनुष्य पर्याय प्राप्त करके त्याग के भाव बने हैं जो संसार की स्थिति का ह्रास करने वाले हैं। हे तात! अब मुझे सहर्ष अनुमति प्रदान करें, मेरा एक-एक पल आत्मचिंतन के लिए इंतजार कर रहा है।

पत्थर की मूर्ति की भाँति जड़वत् खड़े-खड़े भाई-भाभी हीरालाल को आत्मपथ की ओर जाते देखते रहे और मौनपूर्वक लघु भ्राता के निराबाध जीवन के लिए आशीर्वाद प्रदान करते रहे।

सबके मोह को त्यागकर हीरालाल जी अब पूर्ण निश्चिंत होकर खुशालचंद को साथ लेकर वापस आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के पास पहुँच गए। उस समय आचार्यश्री कुम्भोज नगर में विराजमान थे। गुरुचरणों में पहुँचकर हीरालाल प्रसन्नता के अथाह सागर में गोते लगाने लगे। उनको नमन कर पुनः दीक्षा के लिए याचना की।

आचार्यश्री ने परीक्षा के तौर पर उन ब्रह्मचारियों को कहा–

हे भव्ययुगल! जैन दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व खूब विचार मंथन कर लो। जिसे लेना ही नहीं वरन् एक सबल योद्धा की भाँति पालन करना अति आवश्यक है क्योंकि तलवार की धार के समान यह जैनी दीक्षा लाखों कष्ट-उपसर्गों के आने पर भी छोड़ी नहीं जाती। सर्दी-गर्मी, नग्नता, केशलोंच, एक बार भोजन आदि समस्त परीषह समतापूर्वक सहन करने वाला ही अपने आत्मतत्त्व को सिद्ध कर सकता है।

यद्यपि आचार्यदेव की दूरदृष्टि उनके अन्तस्तल को पहचान चुकी थी किन्तु खूब ठोक-बजाकर एक बार दोनों की दृढ़ता तो देखनी ही थी इसीलिए उन्होंने पुनः प्रश्न किया–

शिष्यों! यदि तुम वास्तविक रूप में संसार से विरक्त होकर मेरे पास आए हो एवं इन कष्टों को सहन करने की पूर्ण क्षमता रखते हो तो मुझे दीक्षा देने में कोई एतराज नहीं है।

निराश मन में आशा की किरणें फूट पड़ीं, रश्मियाँ बिखरने लगीं और प्रकाश चारों ओर फैल गया। हृदय में ज्ञानसूर्य उदित हो गया। सच्चे हृदय से दोनों ने स्वयं को गुरुचरणों में समर्पित कर दिया और कहने लगे–

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

हे भगवन् ! आप सबके निष्कारण बंधु हैं, जैसे भी चाहें हम लोगों का कल्याण करें। हम तो मात्र आपकी शरण में आए हुए अबोध शरणागत हैं।

आचार्यश्री ने उभय ब्रह्मचारी को अपना शिष्य बना लिया एवं दीक्षा के लिए तत्पर उन दोनों को धार्मिक अध्ययन कराना प्रारम्भ कर दिया। श्रावक की चर्या,उनके कर्तव्य आदि बतलाते हुए ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप बताया।

ऊँचे महल की ऊँचाई तक पहुँचने के लिए सीढ़ियों पर क्रम-क्रम से चढ़ना पड़ता है तभी मंजिल प्राप्त हो सकती है उसी प्रकार मोक्ष महल तीनलोक से भी ऊँचा है उसे प्राप्त करने के लिए क्रम-क्रम से श्रावक, क्षुल्लक, ऐलक, मुनि आदिरूपी सीढ़ियों पर चढ़ना पड़ता है तभी वह मंजिल प्राप्त हो सकती है।

इसी क्रम के अनुसार आचार्यदेव ने ब्रह्मचारीयुगल को सर्वप्रथम श्रावकोत्तम क्षुल्लक दीक्षा देने का निर्णय किया और शुभमुहूर्त निकाला वि. सं. 1980, सन् 1923, फाल्गुन शुक्ला सप्तमी का पवित्र दिवस।

हीरालाल यद्यपि मुनिदीक्षा को ही सर्वप्रथम धारण करना चाहते थे किन्तु आचार्यश्री की आज्ञानुसार शारीरिक परीक्षण हेतु क्षुल्लक दीक्षा में ही सन्तोष प्राप्त किया।

दो नवयुवक ब्रह्मचारियों की दीक्षा का समाचार सुनकर सारी जनता उमड़ पड़ी। अश्रुपूरित नयनों से लोग इनके वैराग्य की प्रशंसा कर रहे थे और जय-जयकारों के अविरल स्वर से अपने पापों का क्षालन कर रहे थे।

आचार्यश्री अपने नवशिष्यों के मस्तक पर दीक्षा के संस्कार करने में मग्न थे। संस्कारों के साथ-साथ पारम्परिक और शास्त्रिक नियम भी नवदीक्षित शिष्यों को ग्रहण कराए।

दोनों ने विशाल जनसमूह के मध्य खड़े होकर आचार्यश्री के द्वारा प्रदत्त समस्त नियमों को सविनय स्वीकार किया एवं जीवन भर गुरु के अनुशासन में रहने का संकल्प लिया। तभी गुरुदेव ने सभा के मध्य **ब्र. हीरालाल को क्षुल्लक श्री वीरसागर और ब्र. खुशालचंद को क्षुल्लक चंद्रसागर** नाम से सम्बोधित किया, जिसका सभी ने जय-जयकारों के साथ स्वागत किया।

मस्तक पर प्रथम संस्कारों के कारण क्षुल्लक वीरसागर बड़े और चंद्रसागर छोटे क्षुल्लक जी बन गए।

मात्र चादर और लंगोटी को धारण करके दोनों शिष्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के दाएँ-बाएँ हाथ बन गए थे। गुरु के साथ ये भी पैदल ही विहार करने लगे

कुछ ही दिनों में वि.सं. 1981, सन् 1924 में संघ समडोली ग्राम में पहुँचा और वहीं वर्षायोग स्थापना हुई। सतत ज्ञानाराधना एवं अपनी चर्या में सावधान क्षुल्लक वीरसागर को अभी पूर्ण संतुष्टि नहीं थी, वे तो दिगम्बरी दीक्षा धारण करके कठोर तपश्चरण करना चाहते थे।

गुरु आज्ञा में निरन्तर प्रयत्नशील शिष्य को एक न एक दिन गुरु का अनुग्रह

अवश्य प्राप्त होता है।

एक दिवस क्षुल्लक वीरसागर ने आचार्यश्री के पास जाकर निवेदन किया-

गुरुदेव! मैं मुनिव्रत की दीक्षा लेना चाहता हूँ । आप विश्वास रखें, मैं आपके निर्देशानुसार प्रत्येक चर्या का निर्दोष रीति से पालन करूँगा।

शिष्य की तीव्र अभिलाषा एवं पूर्ण योग्यता देखकर आचार्यश्री ने समडोली में ही इन्हें मुनि दीक्षा प्रदान की। अब तो वीरसागर जी क्षुल्लक से मुनि वीरसागर बन गए और मानो आज तो त्रैलोक्यसम्पदा ही प्राप्त हो गई हो।ऐसी असीमित प्रसन्नता वीरसागर जी ने अपने जीवन में प्रथम बार प्राप्त की थी।

इसीलिए आचार्यश्री शांतिसागर महाराज के प्रथम शिष्य होने का परम सौभाग्य मुनि वीरसागर जी को ही प्राप्त हुआ।

मुनि दीक्षा के पश्चात् आपने आचार्य संघ के साथ दक्षिण से उत्तर तक बहुत सी तीर्थवंदनाएँ करते हुए पदविहार किया। गुरुदेव के चरण सानिध्य में अनमोल शिक्षाओं को जीवन में गाँठ बाँधकर आपने रखने का निर्णय किया था इसीलिए अन्त तक गुरुभक्ति का प्रवाह हृदय में प्रवाहित रहा।

आचार्यश्री के साथ आपने 12 चातुर्मास किए। उन गाँवों के नाम –

श्रवणबेलगोल, कुम्भोज, समडोली, बड़ी नांदनी, कटनी, मथुरा, ललितपुर, जयपुर, ब्यावर, प्रतापगढ़, उदयपुर तथा देहली।

उस समय तक आचार्यश्री के 12 शिष्य बन चुके थे –

मुनि वीरसागरजी, चन्द्रसागर, नेमिसागर, कुन्थुसागर, सुधर्मसागर, पायसागर, नमिसागर, श्रुतसागर, आदिसागर, अजितसागर, विमलसागर, पार्श्वकीर्ति।

एक बार आचार्यश्री ने सभी शिष्यों को निकट बुलाकर धर्मप्रचारार्थ अलग-अलग विहार करने का आदेश दिया और संघ को 2-3 भागों में विभक्त कर दिया। यद्यपि सभी शिष्य बहुत दुःखी हुए क्योंकि वे पूज्यश्री की छत्रछाया से वंचित नहीं होना चाहते थे किन्तु -

सिंह लगन सत्पुरुष वचन, कदलीफल इक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार।।

इसी सूक्ति के अनुसार आचार्य महाराज एक बार आज्ञा के पश्चात् कभी उसमें परिवर्तन नहीं करते थे।

अन्त में गुरुवर्य का आशीर्वाद प्राप्तकर सभी ने यत्र-तत्र विहार किया एवं आचार्यश्री की समस्त शिक्षाओं के माध्यम से धर्मप्रचार करना प्रारम्भ कर दिया।

प्रमुख शिष्य मुनि वीरसागर जी ने अपने साथ में मुनि श्री आदिसागर और अजितसागर महाराज को लेकर विहार किया।

वि. सं. 1992, सन् 1935 में गुरुवियोग के दुःख को सहन करते हुए मुनि श्री वीरसागर जी के संघ का प्रथम चातुर्मास गुजरात के ईडर शहर में हुआ, जहाँ अपूर्व धर्मप्रभावना हुई। इस शताब्दी में लुप्त साधु परम्परा को जीवन्तरूप प्रदान करने वाले आचार्यश्री को सभी नर-नारियों ने एक नरपुंगव के रूप में देवता मानकर मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

समस्त शिष्यों के विहार करने के पश्चात् आचार्यश्री के पास मात्र एक मुनि नेमिसागर जी आग्रहपूर्वक रह गए थे जिन्हें अहर्निश गुरुचरणों का सानिध्य प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आत्मकल्याण के साथ-साथ परकल्याण की भावना में तत्पर वीरसागर महाराज ने गाँव-गाँव में विहार करते हुए अनेक शिष्यों को क्षुल्लक, ऐलक, मुनि बनाया तथा अनेकों महिलाओं को आर्यिका, क्षुल्लिका के व्रत प्रदान कर मोक्षमार्ग में लगाया।

वि. सं. 1965 में इन्दौर चातुर्मास में आपने अपने गृहस्थावस्था के बड़े भाई गुलाबचंद को सप्तमप्रतिमा के व्रत दिए थे, जो आगे जाकर दसवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक प्रसिद्ध हुए हैं।

वि. सं. 2000 में आप खातेगांव चातुर्मास करके सिद्धवरकूट क्षेत्र पधारे। दो चक्री दश कामकुमारों की निर्वाणभूमि के पवित्र स्थल पर औरंगाबाद के अन्तर्गत अड़गाँव निवासी खंडेलवाल जाति में जन्म लेने वाले राँवका गोत्रीय श्रावक हीरालाल को क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की और उनका शिवसागर नाम रखा।

शिष्यपरम्परा की शृँखला में वीरसागर जी के मुनियों में प्रथम शिष्य शिवसागर ही बने, जो भविष्य में गुरु के पट्टाचार्य पद को सुशोभित कर संघ संचालन का श्रेय प्राप्त कर चुके हैं।

बीस वर्षों के लम्बे अन्तराल के पश्चात् सन् 1955 में कुंथलगिरि क्षेत्र पर आचार्यश्री शांतिसागर महाराज ने चातुर्मास किया था। इधर वीरसागर महाराज अपने चतुर्विध संघ सहित जयपर खानिया में चातुर्मास कर रहे थे। हजारों मील की दूरी भी गुरु-शिष्य के परिणामों का मिलन करा रही थी।

आचार्यश्री ने अपने जीवन का अंतिम लक्ष्य यम सल्लेखना ग्रहण कर ली थी। इस समाचार से उनके समस्त शिष्यों एवं सम्पूर्ण जैनसमाज के ऊपर एक

वज्रप्रहार सा प्रतीत होने लगा था। कुंथलगिरि में प्रतिदिन हजारों व्यक्ति इस महान आत्मा के दर्शन हेतु आ-जा रहे थे।

सल्लेखना की पूर्व बेला में ही आचार्यश्री ने अपना आचार्यपद त्याग कर दिया और तत्कालीन संघपति श्रावक श्री गेंदनमल जी जौहरी, बम्बई वालों से एक पत्र लिखवाया। अपने प्रथम शिष्य मुनि श्री वीरसागर महाराज को सर्वथा आचार्यपद के योग्य समझकर एक आदेशपत्र जयपुर समाज के नाम लिखाकर भेजा। यहाँ पर समयोचित ज्यों का त्यों उस पत्र को दिया जा रहा है–

आचार्यश्री द्वारा लिखाया गया समाज को पत्र -

कुंथलगिरि, ता.-24.8.55

स्वस्ति श्री सकल दिगम्बर जैन पंचान, जयपुर!

धर्मस्नेहपूर्वक जुहारू।

अपरंच आज प्रभात में चारित्रचक्रवर्ती 108 परम पूज्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने सहस्रों नर-नारियों के बीच श्री 108 मुनिराज वीरसागर जी महाराज को आचार्यपद प्रदान करने की घोषणा कर दी है अतः उस आचार्यपद प्रदान करने की नकल साथ में भेज रहे हैं, उसे सकल संघ को एकत्र कर सुना देना। **विशेष-** आचार्य महाराज ने यह भी आज्ञा दी है कि आज से धार्मिक समाज को इन्हें (श्री वीरसागर जी महाराज को) आचार्य मानकर इनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए।

लि. गेंदनमल, बम्बई लि. चंदूलाल ज्योतिचंद, बारामती

आचार्यश्री शांतिसागर महाराज की समाधि के पश्चात् जयपुर (खानिया) में आयोजित श्रद्धांजलि सभा में श्री वीरसागर जी महाराज ने अपने गुरुवियोग से व्यथित हृदय के उद्गार श्रद्धांजलि के माध्यम से व्यक्त किये थे। वे श्रद्धांजलि वचन यहाँ प्रस्तुत हैं–

गुरुचरणों की देन

पूज्यपाद गुरुदेव श्री 108 आचार्यवर्य शांतिसागर जी महाराज को जिन्होंने जीवनकाल में परखा और अपनाया, उन्होंने मानव जीवन को सफल कर लिया है। मेरे द्वारा गुरुदेव का शिष्यत्व स्वीकार करने में वैराग्य के अतिरिक्त उनका परमोच्च और महानतम व्यक्तित्व भी कारण था। मैंने गुरुदेव को बहुत ही निकट से देखा, उनके बराबर अन्य महापुरुष अपनी आयु में दृष्टिगोचर नहीं हुआ। मुझ पर यह सारी देन गुरुदेव के चरणों की है।

मुझे सबसे बड़ी व्यथा यह है कि गुरुदेव की सल्लेखना एवं अन्त बेला में मैं

निकट सम्पर्क में न रह सका और न दर्शन प्राप्त कर सका।

मैंने हजारों की संख्या में एकत्रित जनता की प्रार्थना पर भी जिस आचार्यपद को स्वीकार नहीं किया, उसे इस 81 वर्ष की अवस्था में गुरुदेव का प्रसाद समझकर ही अनिच्छा होते हुए भी स्वीकार करना पड़ा। गुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन कैसे करता। इस स्वेच्छाचारी युग में मुझ जैसे अपुण्यशाली से इस पद का निर्वाह कैसे होगा, इसकी मुझे चिन्ता है। मैं चाहता हूँ कि समस्त धार्मिक विवेकी प्राणी गुरुदेव के पदानुसारी बनकर इस परम दुर्लभ मानव जीवन को सफल बनाएं। परमनिःश्रेयस गुरुदेव के प्रति मेरी मनसा-वाचा-कर्मणा श्रद्धांजलि है।

आचार्यपद प्रदान का समारोह दिवस भाद्रपद कृष्णा सप्तमी, गुरुवार निश्चित किया गया था। विशाल प्रांगण में सहस्रों नर-नारियों के बीच श्री वीरसागर मुनिराज को गुरुवर द्वारा दिया गया आचार्यपद प्रदान किया गया। उस समय पण्डित इंद्रलाल जी शास्त्री ने गुरुदेव द्वारा भिजवाए गए आचार्यपद प्रदान पत्र को सभा में पढ़कर सुनाया, जो कि निम्न प्रकार है–

कुंथलगिरि, ता.-24.8.1955

स्वस्ति श्री चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की आज्ञानुसार यह आचार्यपद प्रदान पत्र लिखा जाता है–

हमने प्रथम भाद्रपद कृष्णा 11, रविवार, ता. 24.8.1955 से सल्लेखना व्रत लिया है अतः दिगम्बर जैनधर्म और श्री कुन्दकुन्दाचार्य परम्परागत दिगम्बर जैन आम्नाय के निर्दोष एवं अखण्डरीत्या संरक्षण एवं संवर्धन के लिए हम आचार्यपद अपने प्रथम निर्ग्रन्थ शिष्य श्री वीरसागर जी मुनिराज को आशीर्वादपूर्वक आज प्रथम भाद्रपद शुक्ला सप्तमी, वि. सं. 2012, बुधवार के प्रभात के समय त्रियोगशुद्धिपूर्वक संतोष से प्रदान करते हैं।

आचार्य महाराज ने श्री पूज्य वीरसागर जी महाराज के लिए इस प्रकार आदेश दिया है।

इस पद को ग्रहण करके तुमको दिगम्बर जैनधर्म तथा चतुर्विध संघ का आगमानुसार संरक्षण तथा संवर्धन करना चाहिए, ऐसी आचार्य महाराज की आज्ञा है।

आचार्य महाराज ने आपको शुभाशीर्वाद कहा है।

इति वर्धताम् जिनशासनम्

लिखी - गेंदनमल, बम्बई - त्रिबार नमोस्तु।

लिखी - चंदूलाल ज्योतिचंद, बारामती- त्रिबार नमोस्तु।

उपर्युक्त आचार्यपद प्रदान पत्र पढ़ने के बाद श्री शिवसागर जी मुनिराज ने उठकर पूज्य श्री शांतिसागर जी महाराज द्वारा भेजे गए पिच्छी-कमण्डलु भी श्री वीरसागर जी मुनिराज के करकमलों में प्रदान किए। सर्वत्र सभा में आचार्य श्री वीरसागर महाराज की जय-जयकार गूँज उठी।

इसके पूर्व श्री वीरसागर जी महाराज ने कभी भी अपने को **आचार्य** शब्द से सम्बोधित नहीं करने दिया था, यह उनकी पदनिर्लोभता का ही प्रतीक था।

बन्धुओं! यह भवितव्य और गुरुभक्ति का ही चमत्कार है वर्ना कौन जानता था कि छोटे से गाँव में जन्मा एक बालक हम सबका मार्गदर्शक आचार्य बन जाएगा! शायद माता भागू बाई का स्वप्न श्वेत वृषभदर्शन आज का ही मंगल सूचक था। यदि आज के दिन इनके माता-पिता जीवित होते तो उन्हें कैसी अलौकिक प्रसन्नता होती, अपने पुत्र को जगद्वंद्य पद में देखकर। इस खुशी का अनुमान प्रत्येक माता-पिता अपने योग्य पुत्र की उन्नति से प्राप्त कर सकते हैं।

माता-पिता के स्थान पर आज अग्रज गुलाबचंद जी भाई के मोह में विह्वल थे उन्होंने उस भ्राता को अपना भी पूज्य गुरुदेव मानकर शेष जीवन उन्हीं के चरण सानिध्य में व्यतीत कर अपना कल्याण करने का निश्चय किया था। अब आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज अपनी गुरुपरम्परा के आधार पर अपने चतुर्विध संघ का संचालन करने लगे।

आचार्यश्री के जीवन की विशेषताएँ–

पूत के पाँव पालने में ही दिख जाते हैं इसी सूक्ति के अनुसार आचार्यश्री का प्रारम्भिक जीवन ही उनकी महानता का दिग्दर्शन करा रहा था पुनः पारसमणि के स्पर्श से जैसे लोहा भी सोना बन जाता है उसी प्रकार आपने चारित्रचक्रवर्तीरूपी पारस के चरणों का जब स्पर्श कर लिया था तो जीवन कुन्दन ही नहीं बना प्रत्युत् गुरु के समस्त गुणों को भी अपनाकर मानो सोने में सुगंधि ही डाल दी थी। यही कारण रहा कि आपके जीवन में पग-पग पर विशेषताएँ चरण चूमने लगीं।

वीरसागर नाम क्यों पड़ा?

व्याकरणशास्त्र के अनुसार वि-विशेषेण, ई-लक्ष्मी, रा-राति ददाति असौ वीरः। जो अपूर्व लक्ष्मी को देता है उसे वीर कहते हैं किन्तु ये वीरसागर तो स्वयं

नग्न थे तो दूसरे को लक्ष्मी कहाँ से देते?

नहीं, नहीं, यह संसार की क्षणिक, विनाशीक लक्ष्मी नहीं वरन् गुरुदेव तो शिष्यों को रत्नत्रय की शाश्वत, अविनश्वर, अपूर्व लक्ष्मी प्रदान करते थे तथा जिनकी आत्मा रणक्षेत्र के बहादुर सैनिकों की भांति कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के दृढ़संकल्पपूर्वक दीक्षा के मैदान में प्रवृत्त हुई थी, वे तो काम और नाम दोनों से ही वीर नाम को सार्थक कर रहे थे।

वीर के साथ सागर शब्द भी जुड़ा है अतः आप सागर के समान गम्भीर, स्याद्वादवचनरूपी तरंगों से व्याप्त एवं मूलगुण एवं उत्तरगुणरूपी रत्नों से युक्त और अगाध ज्ञान के धारी होने से वीरसागर नाम से जाने जाते थे किन्तु क्या सागर जल के समान आपके वचनों में खारापन था?

ऐसा होता, तो सभी उन वचनों को सुनकर भाग जाते क्योंकि खारा जल कोई पीना नहीं चाहता। सागर तो मानों इन श्रीगुरु के चरणों में अपनी हार मानकर मस्तक झुकाकर कह रहा था–

मैं तो नकली सागर हूँ किन्तु असली सागर तो आप ही हैं क्योंकि आप संसार सागर से लोगों को पार लगाकर मोक्ष पहुँचाते हैं किन्तु मैं तो मात्र खड़ा हिलोरे ही भर रहा हूँ।

वह तो बार-बार अपनी बदनसीबी पर आँसू बहाते हुए कहता है–

भगवन्! सैकड़ों, हजारों टन मिश्री मेरे पेट में डाल दी जावे तो भी मेरा दुःस्वादु जल सुस्वादु अर्थात् मीठा नहीं बन पाता किन्तु आपके वचन तो स्वयमेव मिश्रीरूप ही हैं जो सारे संसार को मिष्टता प्रदान करते हैं अतः आप ही सच्चे सागर हैं, मैं तो नामधारी सागर ही रह गया।

ऐसे सागर की सार्थकता को पहचानने वाले वीरसागर महाराज थे। जिसने एक ही बार आपके धर्मामृत का पान किया हो तो उसकी बार-बार पीने की इच्छा होती थी। आपकी सहनशीलता अत्यन्त आश्चर्यकारी थी।

एक बार नागौर चातुर्मास में आपके पीठ में एक भयंकर फोड़ा हुआ जिसमें तीव्र वेदना होती थी, भयंकर ज्वर आता था परन्तु आपके मुख से कभी दुःखपूर्ण शब्द सुनने को नहीं मिला बल्कि फोड़ा पूरा पक जाने पर जब डॉक्टर को उसके आप्रेशन को बुलाया गया तब डॉक्टर तो भयभीत सा पीछे खड़ा था और महाराजश्री अपनी दैनिक क्रियाओं में संलग्न थे।

उस समय एक श्रावक ने महाराज का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा–

महाराज! डॉक्टर आ गए हैं, आपके फोड़े का आप्रेशन होगा।

आचार्यश्री ने एक नजर से डॉक्टर को देखा और पूछा–

भाई! तुम मुझे यह बता दो कि इसके आप्रेशन में कितना समय लगेगा? डॉक्टर बोला–**गुरुदेव! आपके इतने बड़े फोड़े का आप्रेशन बिना बेहोशी के हो पाना असम्भव है, आप इस असह्य वेदना को सहन नहीं कर सकते।**

महाराज बोले–**भैया! जब हम अनादिकाल से जन्म-मरण के घोर कष्ट सहन करते आ रहे हैं तो यह कष्ट कौन सा असह्य है? तुम अपना काम शुरू करो, मुझे समय बता दो।**

डॉक्टर पूज्यश्री की दृढ़ता को भांप चुका था अतः काँपते हाथों से उसने औजार निकाले और मुनिश्री को कह दिया कि 1 घण्टा तो साधारण सी बात है। वह सोच रहा था कि मेरे तीखे पैने औजार इस भयंकर दर्दनाक फोड़े पर लगते ही ये बाबा तो चीत्कार कर उठेंगे किन्तु यह क्या! डॉक्टर 1 घण्टे तक उस पीठ पर अपना कार्य करते रहे, सारा कार्य सम्पन्न हो गया। वह तपस्वी अपने चिन्तन में मग्न। कुछ क्षण डॉक्टर उस आत्मसाधक को अपलक निहारता रहा पुनः ध्यान भंग किया–

मुनिवर! मैंने ऑप्रेशन कर दिया है। आचार्यश्री के चरणों में वह नतमस्तक हो गया।

हमारे पाठक बन्धुओं को भी आश्चर्य हो रहा होगा कि ऐसी कौन सी शक्ति आचार्यश्री के अन्दर समाविष्ट हो गई थी? आचार्यश्री ने शिष्यों के प्रश्न पर यही बताया कि **मैं अपने चित्त को गोम्मटसार कर्मकाण्ड में वर्णित कर्मप्रकृतियों के चिन्तन में लगाकर सोच रहा था कि यह जीव संसार में किस प्रकार से कौन-कौन से कर्मों का बंध करता है? किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय, अनुदय और उदयव्युच्छित्ति है? इस गणितीय विज्ञान में दर्द का अहसास नहीं हुआ।**

धन्य हैं ऐसे धीरवीर महामना योगिराज! वास्तव में ऐसे ही योगी के प्रति पं. दौलतराम जी ने ये शब्द लिखे हैं–

तिन सुथिर मुद्रा देख मृगगण, उपल खाज खुजावते।

आपकी गुरुभक्ति विशिष्ट थी। प्रत्येक प्रतिक्रमण के दिन आप अपने गुरु का स्मरण अवश्य करते और शिष्यों से कहते थे कि **तुम लोग तो प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो जाते हो परन्तु मेरे गुरु मेरे समीप नहीं हैं, मैं अपनी शुद्धि कैसे करूँ?**

इसी प्रकार से आचार्यश्री की प्रमुख शिष्याओं में से पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी कई बार अपने गुरुदेव के संस्मरण सुनाते हुए कहा करती हैं कि–

आचार्यश्री प्रायः सायंकाल के समय समस्त शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहते थे कि **देखो! तुम शिष्यगण मेरे अनुशासन में रहकर एकता के सूत्र में बंधे हो इसीलिए मेरे आचार्यपद की गरिमा है क्योंकि गुरु से शिष्यों की और शिष्यों से गुरु की शोभा रहती है।** उनकी शिक्षाओं में प्रमुख शिक्षा थी–

जीवन में सदैव सुई का काम करो, कैंची का नहीं अर्थात् समाज एवं परिवार में रहकर संगठन के कार्य करो, विघटन के नहीं क्योंकि कैंची कपड़े को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देती है लेकिन एक छोटी सी सुई उन टुकड़ों को भी सिलकर एक कर देती है। उसी प्रकार से कभी ऐसे कार्य मत करो जिससे संघ के टुकड़े हों। सब लोग सहनशील बनकर संगठन के धागे से बंधे रहो। यही कारण था कि आचार्यश्री के जीवनकाल तक कोई भी शिष्य उन्हें छोड़कर कभी संघ से अलग नहीं हुआ।

सम्यक्त्व की दृढ़ता हेतु वे कहा करते थे–

तृण मत बनो, पत्थर बनो। पाश्चात्य संस्कृतिरूपी हवा के झकोरे में जो तृणवत् हल्के हैं, अस्थिर बुद्धि के हैं, वे बह जाते हैं किन्तु जो पत्थर के समान अचल हैं, जिनवाणी के दृढ़ श्रद्धालु हैं, वे अपने स्थान पर एवं सम्यक्त्व में अचल रहते हैं। वे गुरुदेव सम्यक्त्व में सदैव स्वयं भी अचल रहे हैं और अपने शिष्यों को भी आगममार्ग में अचल रखा है।

कभी-कभी महाराज पुत्रवत् अपने शिष्यों के मुँह से अमुक रोगों की चर्चा सुनकर हँसकर कहते कि–

मुझे तो मात्र दो रोग हैं–एक तो भूख लगती है, दूसरे नींद आती है अर्थात् जिनके ये दो रोग समाप्त हो जावेंगे, वे संसारी ही नहीं रहेंगे बल्कि मुक्त कहलाएँगे अतः इन्हीं दो रोगों के नष्ट करने का उपाय करना चाहिए।

शिष्य परिकर के मनोरंजन हेतु श्री वीरसागर महाराज सदैव कुछ न कुछ घूँटी पिलाने का प्रयास करते हुए कहते–

अपने दीक्षा दिवस को कभी मत भूलो अर्थात् दीक्षा के समय परिणामों में विशेष निर्मलता रहती है इसीलिए उस दिवस के उज्ज्वल भावों को हमेशा याद रखने वाला साधु कभी भी अपने पद से च्युत नहीं हो सकता है और उत्तरोत्तर चारित्र की वृद्धि ही होती है।

ऐसे अनेकों सूत्ररूप वाक्य हैं जिन्हें आचार्यश्री अपने जीवनकाल में प्रयोग करते थे।

आचार्यश्री वीरसागर महाराज को मृगी का रोग था। जब उसका असर होता

था, उस समय वे **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** आदि सूत्रों को उच्चस्वर से बोलते हुए उनका अर्थ करने लगते और उपदेश देने लगते थे, तब पास में बैठे हुए साधुओं को पता लग जाता था कि आचार्यश्री को इस समय दौरे का प्रकोप है। कभी-कभी जोर-जोर से महामंत्र का उच्चारण करने लगते, तब यह ज्ञात हो जाता कि आचार्यश्री को मृगी का प्रकोप हो रहा है। यह उनके जीवन के संस्कारों की ही प्रबलता थी कि मूर्च्छित अवस्था में भी आचार्यश्री की धार्मिक क्रियाओं के अतिरिक्त अनर्गल चर्या नहीं होती थी।

वे धवला की भिन्न-भिन्न पुस्तकों का स्वाध्याय दिन भर किया करते थे। एक बार उन्होंने कहा कि **इन ग्रन्थों के बहुत से विषयों को मैं समझ नहीं पाता हूँ फिर भी धवला की प्रथम पुस्तक में यह बात लिखी है कि स्वाध्याय के समय असंख्यातगुणितरूप से कर्मों की निर्जरा होती है इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैं सतत इन ग्रन्थों का स्वाध्याय करता रहता हूँ।**

शुद्धोपयोगरूप वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थित नहीं रह सकने वाले साधुओं के लिए श्रीकुन्दकुन्ददेव ने प्रवचनसार में कहा है कि–

दंसणणाणुवदेसो, सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणं, जिणिंद पूजोवदेसो य।।248।।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का उपदेश, शिष्यों का ग्रहण तथा उनका पोषण और जिनेन्द्रदेव की पूजा का उपदेश वास्तव में सरागियों की (आचार्यों की) चर्या है। आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के अन्दर आचार्य के समस्त गुण विद्यमान थे। आपके शिष्यों की प्रत्यक्षदर्शी एक घटना है–

एक बार वीरसागर महाराज का संघ सम्मेदशिखर की यात्रा करने जा रहा था। भागलपुर के रास्ते में एक जंगल में जा रहे थे, शाम हो जाने पर संघ आचार्यश्री की आज्ञानुसार एक पाठशाला में ठहर गया। भयानक जंगल था, वहाँ से गाँव दो मील दूर था। गाँव के लोग कहते थे कि यहाँ चोरों का भय है परन्तु दिगम्बर साधुओं को किस बात का भय? संघ के सभी लोग वहीं ठहर गए।

रात्रि में दस बजे एक सिपाही वेषधारी मानव आया। उसके हाथ में डंडा था अतः सभी ने सोचा कि पुलिस का कोई आदमी होगा। सभी लोग सो गए, प्रातः जब चार बजे सब लोग उठे, तब तक वह बैठा था। संघ में एक ब्र. चांदमल जी थे, उन्होंने कहा कि प्रातःकाल इसको कुछ पुरस्कार देंगे। सामायिक के बाद देखा तो वहाँ कोई नहीं था। आसपास में उसे खोजा गया लेकिन कहीं पता नहीं लगा।

अनुमानतः वह वास्तविक मानव नहीं था, महाराज के तपप्रभाव से संघ की रक्षा करने के लिए कोई मानव वेषधारी देव आया था।

आचार्यश्री के समीप आते ही प्रत्येक प्राणी एक अलौकिक शाँति की अनुभूति करता था। पूज्य अचार्यश्री की मधुरवाणी, स्पष्ट भाषा, तात्त्विक विवेचन गहन तोथे ही, पर वे उनके लिए आजकल के तथाकथित तत्त्ववेत्ताओं के समान वाणीविलास की मात्र चर्चा नहीं थी। वे जो कुछ कहते थे, उसे पहले अपने जीवन में उतारते थे।भगवान महावीर के पथ पर चलने वाले वे नरसिंह थे। उन्होंने आज के इस दुःषमकाल मेंभी शरीर और आत्मा के भेदविज्ञान को अपनी कठोर साधना द्वारा साक्षात् करके दिखाया था। अनेकों बार कठिन परीषह आने पर भी वे हिमालय की तरह अडिग थे।

आचार्यश्री अत्यन्त अनुभवी एवं सामाजिक गतिविधियों के पूर्ण जानकार थे। संघ संचालन के मध्य कभी-कभी समाज में तेरह-बीसपंथ की चर्चाएं भी उठतीथीं, तब आप शांतिपूर्वक कहा करते थे कि**ये तेरापंथी तो अधूरे हैं, सच्चे तेरापंथी तो हम मुनिगण हैं जो तेरह प्रकार का चारित्र पालन करते हैं।** जब कोई विवाद उनके सामने आता था, तब वे आगम का उत्तर देकर कह देते थे कि**आगे तुम्हारी तुम जानो, मैं इससे आगे अपनी बुद्धि लगाकर पाप बंध करना नहीं चाहता।** यह उनका शांतिपूर्ण शास्त्रीय पद्धति का उत्तर था। वे यह भी कहते थे कि**भगवान के दर्शन तो उनकी शाँतमुद्रा मुखच्छवि के होते हैं और पूजा उनके चरणकमलों की होती है**

श्री वीरसागर महाराज की असीम शांतमुद्रा से न केवल मनुष्य बल्कि पशु भी अपनी क्रूरता को छोड़कर शाँतचित्त हो जाते थे।

सन् 1956 में वैशाख कृष्णा दूज के दिन माधोराजपुरा (राज.) में आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज एक विशाल पाण्डाल में पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी को आर्यिका दीक्षा प्रदान करने के पश्चात् सिंहासन पर विराजमान होकर उपदेश दे रहे थे, उसी समय एक बहुत बड़ा साँड भरी सभा में घुस आया। उसे देखकर लोगों में खलबली मच गई, सब यत्र-तत्र भागने लगे। साँड विशाल भीड़ को चीरता हुआ आचार्यश्री की ओर वेग से बढ़ता जा रहा था। अब तो लोग और भी घबराए और अनिष्ट की आशंका से काँप उठे लेकिन दूसरे ही क्षण मनुष्यों को महान आश्चर्य हुआ जब उन्होंने देखा कि आचार्यश्री की तरफ वेग से बढ़ने वाला साँड दुष्ट नहीं, शिष्ट है। सांड आगे बढ़ता है और आचार्यश्री जिस तख्ते पर विराजमान थे, उस पर जाकर अपना सिर टेककर पाँच मिनट तक उसी अवस्था में खड़ा रहता है क्योंकि उस समय वृषभ के मन में आचार्यश्री के चरण-वंदन की महान भावना थी।

आचार्यश्री ने उसे आशीर्वाद दिया और जनता ने उसे भक्ति का प्रसाद सुस्वादु मिष्टान्न दिया। यह दृश्य देखकर जैनाजैन जनता बहुत प्रभावित हुई। यह आचार्यश्री की महान वीतरागता का स्पष्ट प्रभाव था जिनके चरणों में तिर्यंच भी आकर सहर्ष नतमस्तक होकर अपने को धन्य समझते थे।

इसी प्रकार एक बार बनेठा (राज.) नगर में वेदी प्रतिष्ठा स्थानीय श्रावकों ने करवाया था। इसी शुभावसर पर आचार्यश्री को भी संघ सहित वहाँ के श्रावकगण सविनय ले गए थे। गुरुदेव मंदिर जी में विराजमान थे, उसी समय एक कृष्ण सर्प आया और मंदिर में चारों तरफ घूमता हुआ बीच दरवाजे में फण फैलाकर बैठ गया। जब आचार्यश्री उस रास्ते से निकले तो सर्प फौरन ही नयन छिपाकर चला गया, यह दृश्य 3 दिन तक रहा।

जब आचार्यश्री ने संघ सहित सवाईमाधोपुर चातुर्मास करके मारवाड़ में विहार किया, उस समय पानी की बहुत तंगी थी किन्तु गुरुदेव जिस गाँव में गए, पानी उसी गाँव में बरस जाता था अतः रास्ते में संघ को किसी प्रकार की तकलीफ नही हुई और गांव वालों ने इस वर्षा को गुरु का ही प्रसाद माना।

गुरु-शिष्य का रोमांचक मिलन–

वि. सं. 1996 में इन्दौर के चातुर्मास के अनन्तर श्री वीरसागर महाराज ने अपने संघ सहित सिद्धक्षेत्र मांगीतुंगी की ओर विहार किया। मांगीतुंगी में उस समय कन्नड़ निवासी सेठ गुलाबचंद जी पहाड़े एक बिम्ब प्रतिष्ठा करवा रहे थे। इसी शुभ अवसर पर चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज भी यहाँ पधारे और उनके शिष्य पूज्य वीरसागर महाराज भी संघ सहित पधारे। गुरु के दर्शन प्राप्तकर वीरसागर जी के हर्षातिरेक में अश्रु झरने लगे, यह गुरु-शिष्य के संगम का अपूर्व दृश्य था।

गुरुचरणों की सेवा का पुनः सौभाग्य प्राप्तकर वीरसागर महाराज ने इस अमूल्य समय का पूर्ण सदुपयोग किया। 4 वर्षों में ही अपने शिष्य के संघवृद्धि, अनुशासन आदि गुणों को देखकर आचार्यश्री को बड़ी प्रसन्नता हुई।

चंद दिवसों का वह मिलन गुरु-शिष्य के मन में एक अमिट छाप छोड़ गया पुनः दोनों का यत्र-तत्र विहार हो गया।

वि. सं. 1997 का चातुर्मास पूज्य वीरसागर महाराज ने अपनी कर्मभूमि अतिशयक्षेत्र कचनेर में किया। इस चातुर्मास में पूज्य महाराजश्री के सानिध्य में पचासों मण्डल विधान के आयोजन हुए तथा अनेकों व्रती बने। चातुर्मास समाप्ति

पर वहाँ के श्रावकों ने एक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई, उस मौके पर पानी की कमी थी, मंदिर के कुँए का पानी बिल्कुल खारा था। लोग चिन्तित थे कि पानी की व्यवस्था यात्रियों के लिए किस प्रकार की जाएगी किन्तु गुरुदेव के शुभाशीर्वाद से खारा पानी एकदम मीठा हो गया। यात्रियों को किसी प्रकार की तकलीफ नहीं हुई और प्रतिष्ठा महोत्सव सानंद सम्पन्न हो गया।

कन्नड़ में चातुर्मास करके पूज्य आचार्यश्री को मलेरिया बुखार आना शुरू हो गया। बुखार 106 डिग्री तक रहता था लेकिन महाराज ने उसका कोई उपचार नहीं करने दिया। लगभग डेढ़ महीने तक ज्वर चलता रहा, इतना ज्वर एवं अशक्तता होने पर भी महाराज अपने दैनिक कार्यों में जरा भी प्रमाद नहीं होने देते थे, वे तो अपने आत्मचिंतन एवं शास्त्रश्रवण में ही संलग्न रहते थे।

वि. सं. 1999 में आपका चातुर्मास कारंजा नगर में हुआ। वैसे तो यह कस्बा काफी बड़ा है तथा जैनियों के 300 घर भी हैं, विशाल तीन मंदिर तथा गाँव के बाहर विद्याध्ययनार्थ एक गुरुकुल है जिसमें विद्यार्थी पठन-पाठन करते हैं, यहाँ अध्यात्मवेत्ता बड़े-बड़े विद्वान भी रहते थे। पूज्य महाराजश्री से तरह-तरह के गूढ प्रश्न भी लोग करते थे किन्तु आचार्यश्री अपने प्रखर ज्ञान से सभी के प्रश्नों का शास्त्रोक्त रीति से उत्तर देते थे। चातुर्मास के पश्चात् विहार करके महाराज संघ सहित मुक्तागिरि आ गए, जहाँ 3 महीने संघ रुका।

मुक्तागिरि से जब संघ खातेगाँव को रवाना हुआ, तब 300 मील तक कोई श्रावकों के घर नहीं थे, श्रावकों के 6-7 चौके संघ के साथ थे।

उसी रास्ते में एक चौरपाठा नामक गाँव मिला। वहाँ मुसलमान जाति की सुलीमा नामक एक जागीरदारिणी रहती थी, जो योग्य रीति से राज्य संचालन और प्रजा का पालन करती थी, उसकी शिक्षा बी.ए. तक थी, उम्र मात्र 25 वर्ष की थी।

दुर्भाग्यवश विवाह के दूसरे वर्ष ही उसे वैधव्य का असीम दुःख सहन करना पड़ा था। गाँव के लोग एवं परिवार वालों के आग्रह पर भी उसने पुनः विवाह करने से इंकार कर दिया था।

गाँव में इस संघ के पहुँचने पर उसने बड़ी भक्ति से आकर आचार्यश्री के दर्शन किए, उनका अहिंसात्मक उपदेश सुना, जिससे प्रभावित होकर आचार्यश्री के पादमूल में हिंसा करने का, माँस खाने का एवं रात्रि में भोजन करने का जीवनपर्यंत के लिए त्याग कर दिया। इतना ही नहीं, उसने अपने द्वारा शासित 300 गाँवों में हिंसा न करने की घोषणा करवा दी थी।

प्राणिमात्र को अभयदान देने वाले गुरुराज के चरणकमलों का ही प्रसाद इसे समझना चाहिए।

कोटा के पास चम्बल नदी के तट पर बसा हुआ केशवरायपाटन नामक अतिशयक्षेत्र है। वहाँ पर तलघर में विराजमान भगवान आदिनाथ की अतिशययुक्त प्रतिमा के दर्शन करते हुए आचार्यश्री ने अपने संघ सहित रामगंजमण्डी में चातुर्मास किया।

चातुर्मास के अनन्तर विहार करके संघ राणापुर आ गया। वहाँ पर बिना वेदी के जिनबिम्ब अस्त-व्यस्त विराजमान थे, यह अविनय देखकर महाराज ने श्रावकों को सदुपदेश दिया। तब समाज ने सुन्दर वेदी का निर्माण कराकर शुभमुहूर्त में प्रतिष्ठा कराकर मूर्तियाँ विराजमान कराईं। साधुओं के विहार से इस प्रकार के जनकल्याण के कार्य सहज ही हो जाया करते हैं क्योंकि पथभ्रष्ट अज्ञानी प्राणियों को रास्ता दिखाने वाले परमोपकारी गुरुजन ही हुआ करते हैं।

गाँव-गाँव, नगर-नगर में विहार करते हुए आचार्यश्री ने अनेकों स्थानों पर सदियों से चली आ रही हिंसक बलिपरम्परा को देखा, तब उन्होंने अनेक युक्तियों से पंच पापों के फल के दर्दनाक वर्णनपूर्वक अपने उपदेशों से बलिप्रथा बंद कराई।

वर्तमान परम्परा के अनुसार उस समय दिगम्बर जैन साधुओं के अलग-अलग संघ नहीं थे और न उनकी कोई भिन्न-भिन्न परम्पराएँ थीं किन्तु सारे हिन्दुस्तान में आचार्य श्री शांतिसागर महाराज की आदर्श परम्परा वाला आचार्य श्री वीरसागर महाराज का संघ ही कहा जाता था। सम्पूर्ण अनुशासन पट्टाधीश आचार्यश्री का ही चलता था जिसका पालन आज तक भी उस पट्ट परम्परा वाले संघ में हो रहा है।

आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज ने अपने चतुर्विध संघ सहित सन् 1957 का चातुर्मास जयपुर-खानिया में किया। उस चातुर्मास के मध्य आपका शारीरिक स्वास्थ्य अत्यन्त क्षीण होने लगा और आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन महामंत्र का स्मरण करते हुए पद्मासनपूर्वक ध्यानस्थ मुद्रा में नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। आज आचार्यश्री का भौतिक शरीर हमारे बीच में नहीं है किन्तु उनकी अमूल्य शिक्षाएँ विद्यमान हैं। उन पर अमल करते हुए हमें अपने जीवन को समुन्नत बनाना चाहिए क्योंकि ऐसे महापुरुषों के जीवन पर ही निम्न सूक्ति साकार होती है-

मूरत से कीरत बड़ी, बिना पंख उड़ जाय।
मूरत तो जाती रही, कीरत कभी न जाय।।

आचार्य वीरसागर प्रश्नोत्तरी

प्रस्तुतकर्ता—पं. नरेश कुमार जैन 'प्रतिष्ठाचार्य', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर

प्रश्न 1 —बीसवीं शताब्दी के प्रथम आचार्य, जिन्होंने लुप्त मुनिपरम्परा को जीवनदान दिया, उनका नाम बताओ?

उत्तर —चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज।

प्रश्न 2 —चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी के दीक्षा गुरु कौन थे?

उत्तर —मुनि श्री 108 देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज।

प्रश्न 3 —चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी के प्रथम पट्टाचार्य श्री का नाम बताओ?

उत्तर —परमपूज्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज।

प्रश्न 4 —आचार्यश्री वीरसागर जी का जन्म कहाँ हुआ?

उत्तर —आचार्यश्री का जन्म महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद जिले के 'वीर' नामक ग्राम में हुआ था।

प्रश्न 5 —आचार्यश्री वीरसागर जी का जन्म कब हुआ?

उत्तर —वि.सं. 1933, ईसवी सन् 1876 में, आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन।

प्रश्न 6 —आचार्यश्री वीरसागर जी के माता-पिता का नाम बताओ?

उत्तर —माता श्री भाग्यवती जी एवं पिता श्रेष्ठी श्री रामसुख जी थे।

प्रश्न 7 —आचार्यश्री के बचपन का क्या नाम था?

उत्तर —श्री हीरालाल जैन।

प्रश्न 8 —श्री हीरालाल जी के जन्म से पूर्व माता ने क्या स्वप्न देखा था?

उत्तर —माता भाग्यवती ने जन्म से पूर्व उत्तम श्वेत उत्तुंग एक वृषभ (सफेद बैल) स्वप्न में देखा था।

प्रश्न 9 —आचार्यश्री का लौकिक अध्ययन कहाँ तक हुआ?

उत्तर —कक्षा 7 तक हिन्दी व उर्दू दोनों भाषाओं में लौकिक अध्ययन हुआ।

प्रश्न 10—शिक्षा के बाद आचार्यश्री का क्या कार्य रहा?

उत्तर —आचार्यश्री अपने पिता के साथ व्यापार में उदासीन भाव से हाथ बटाने लग गये।

प्रश्न 11—आचार्यश्री किस जाति व गोत्र के रत्न थे?

उत्तर —खण्डेलवाल जाति में गंगवाल गोत्रीय रत्न थे।

प्रश्न 12—आचार्यश्री ने अष्टमूलगुण कब धारण किए?

उत्तर —श्री हीरालाल जी ने आठ वर्ष की आयु में अष्टमूलगुण सहित यज्ञोपवीत धारण किया था।

प्रश्न 13—श्री हीरालाल जी का विवाह हुआ था या नहीं?

उत्तर —ये बाल ब्रह्मचारी थे। इन्होंने विवाह नहीं किया था।

प्रश्न 14—आचार्यश्री ने ब्रह्मचर्य व्रत किससे व कब लिया?

उत्तर —बचपन में ही इन्होंने वैराग्य भाव से स्वयं ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर लिया था।

प्रश्न 15—श्री हीरालाल जी के ब्रह्मचर्य व्रत का पता कब चला?

उत्तर —जब इनके माता-पिता ने विवाह का प्रसंग हीरालाल जी के सामने रखा तब इन्होंने अपने व्रत का खुलासा किया।

प्रश्न 16—श्री हीरालाल जी की त्याग भावना कब जागृत हुई?

उत्तर —इनकी त्याग भावना तो बचपन से ही थी। वे घर में भी रस परित्यागपूर्वक भोजन करते थे तथा समय-समय पर व्रत-उपवास भी किया करते थे।

प्रश्न 17—माता-पिता के वियोग के बाद हीरालाल जी ने क्या किया?

उत्तर —कचनेर अतिशय क्षेत्र पर धार्मिक पाठशाला खोलकर बच्चों को निःशुल्क अध्ययन कराना प्रारंभ कर दिया।

प्रश्न 18—कचनेर में आप किस नाम से प्रसिद्ध हुए?

उत्तर —'गुरु जी' के नाम से।

प्रश्न 19—आपने सप्तम प्रतिमा के व्रत किससे, कब और कहाँ लिए?

उत्तर —वि.सं. 1978, सन् 1921 में ऐलक श्री पन्नालाल जी से नांदगांव में चातुर्मास में सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए।

प्रश्न 20—हीरालाल जी सप्तम प्रतिमा लेने के बाद किसके साथ रहे?

उत्तर —ब्रह्मचारी श्री खुशालचंद जी के साथ रहने लगे।

प्रश्न 21—ब्र. हीरालाल व ब्र. खुशालचंद को चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम दर्शन कहाँ हुए?

उत्तर —दक्षिण भारत के कोन्नूर ग्राम में।

प्रश्न 22—ब्र. हीरालाल जी ने क्षुल्लक दीक्षा कब और किससे ली?

उत्तर —वि.सं. 1980 सन् 1923, फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी से क्षुल्लक दीक्षा प्राप्त की।

प्रश्न 23—क्षुल्लक दीक्षा के बाद ब्र. हीरालाल जी व ब्र. खुशालचंद जी किस

नाम से प्रसिद्ध हुए?

उत्तर –ब्र. श्री हीरालाल जी क्षुल्लक श्री वीरसागर व ब्र. श्री खुशालचंद जी क्षुल्लक चन्द्रसागर जी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

प्रश्न 24 –क्षुल्लक श्री वीरसागर जी का प्रथम चातुर्मास कहाँ हुआ?

उत्तर –चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के साथ दक्षिण भारत के ग्राम 'समडोली' में प्रथम चातुर्मास हुआ।

प्रश्न 25 –क्षुल्लक वीरसागर जी की मुनि दीक्षा कब और कहाँ हुई?

उत्तर –वि.सं. 1981, सन् 1924 में समडोली ग्राम में मुनिदीक्षा हुई।

प्रश्न 26 –चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम मुनि शिष्य कौन थे?

उत्तर –बा. ब्र. मुनि श्री 108 वीरसागर जी महाराज।

प्रश्न 27 –मुनि श्री वीरसागर जी ने अपने गुरु के साथ कितने चातुर्मास किए?

उत्तर –गुरु के साथ 12 चातुर्मास किए।

प्रश्न 28 –गुरु के साथ कहाँ-कहाँ चातुर्मास किए?

उत्तर –1. श्रवणबेलगोला 2. कुम्भोज 3. समडोली 4. बड़ी नांदनी 5. कटनी 6. मथुरा 7. ललितपुर 8. जयपुर 9. ब्यावर 10. प्रतापगढ़ 11. जयपुर 12. दिल्ली।

प्रश्न 29 –चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रमुख शिष्यों के नाम बताओ?

उत्तर –मुनि श्री वीरसागर जी, मुनि श्री चन्द्रसागर जी, मुनि श्री नेमिसागर जी, मुनि श्री कुंथुसागर जी, मुनि श्री सुधर्मसागर जी, मुनि श्री पायसागर जी, मुनि श्री नमिसागर जी, मुनि श्री श्रुतसागर जी, मुनि श्री आदिसागर जी, मुनि श्री अजितसागर जी, मुनि श्री विमलसागर जी, मुनि श्री पार्श्वकीर्ति जी।

प्रश्न 30 –आचार्य वीरसागर का गुरु से पृथक् प्रथम चातुर्मास कहाँ हुआ?

उत्तर –वि.सं. 1992 सन् 1935 में गुजरात प्रान्त के ईडर नगर में प्रथम चातुर्मास हुआ।

प्रश्न 31 –आचार्यश्री वीरसागर जी ने अपने गृहस्थावस्था के बड़े भाई गुलाबचंद को सप्तम प्रतिमा के व्रत कहाँ और कब दिये?

उत्तर –वि.सं. 1965 में इंदौर चातुर्मास में गुलाबचंद को सप्तम प्रतिमा के व्रत आचार्यश्री ने दिये।

प्रश्न 32 –आचार्यश्री वीरसागर जी के पट्टाचार्य कौन हुए?

उत्तर –आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज।

प्रश्न 33 –आचार्यश्री शिवसागर जी का गृहस्थावस्था का नाम क्या था?

उत्तर –रांवका गोत्रीय श्रावकरत्न हीरालाल जी था।

प्रश्न 34 –श्री हीरालाल जी ने क्षुल्लक दीक्षा किससे और कहाँ ली?

उत्तर –आचार्यश्री वीरसागर जी से सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र-म.प्र. में वि.सं. 2000 में ली थी।

प्रश्न 35 –आचार्यश्री वीरसागर जी के प्रथम मुनिशिष्य कौन हुए?

उत्तर –आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज।

प्रश्न 36 –चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की समाधि कहाँ हुई?

उत्तर –कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र पर सन् 1955 में।

प्रश्न 37 –समाधि से पूर्व चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री ने अपना पद किसको प्रदान किया?

उत्तर –अपने सुयोग्य शिष्य श्री वीरसागर जी महाराज को पत्र लिखकर आचार्यपद प्रदान किया।

प्रश्न 38 –श्री वीरसागर जी महाराज को आचार्यपद कब और कहाँ प्रदान किया गया?

उत्तर –भाद्रपद कृष्णा सप्तमी, गुरुवार को जयपुर-खानियां जी में चतुर्विध संघ व हजारों की संख्या में प्रदान किया गया।

प्रश्न 39 –आचार्यश्री के जीवन की विशेष घटना बताओ?

उत्तर –आचार्यश्री की पीठ पर एक बड़ा फोड़ा हो जाने पर बिना बेहोशी के डॉ. द्वारा आप्रेशन करना।

प्रश्न 40 –आचार्यश्री के जीवन की मुख्य दो सूक्ति जो सदैव कहते थे?

उत्तर –1. जीवन में सदैव सुई का कार्य करो, कैंची का नहीं। 2. तृण मत बनो, पत्थर बनो।

प्रश्न 41 –आचार्यश्री को कौन सा रोग था?

उत्तर –आचार्यश्री को मृगी का रोग था, जब मृगी का दौरा पड़ता था, तो आचार्यश्री सूत्र-श्लोक आदि को उच्च स्वर में बोलने लगते थे।

प्रश्न 42 –चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी एवं मुनि श्री वीरसागर जी का पुनः मिलन कब और कहाँ हुआ?

उत्तर –वि.सं. 1996 में मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के

अवसर पर पुनः गुरु-शिष्य का अपूर्व संगम (मिलन) हुआ।

प्रश्न 43 – आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज की प्रमुख बालब्रह्मचारिणी शिष्या का नाम बताओ?

उत्तर – परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी।

प्रश्न 44 – गणिनीप्रमुख आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी का जन्म कब और कहाँ हुआ?

उत्तर – 22 अक्टूबर 1934, शरदपूर्णिमा के दिन टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र. में पूज्य माताजी का जन्म हुआ।

प्रश्न 45 – पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के माता-पिता का नाम बताओ?

उत्तर – पूज्य माताजी के पिता श्री छोटेलाल जी एवं माता श्रीमती मोहिनी देवी जो आगे चलकर आर्यिका श्री रत्नमती माताजी बनीं।

प्रश्न 46 – पूज्य ज्ञानमती माताजी ने गृहत्याग कब किया?

उत्तर – सन् 1952 में 18 वर्ष की अल्प आयु में शरदपूर्णिमा के दिन आचार्यश्री देशभूषण महाराज से सप्तम प्रतिमा के व्रत लेकर गृह-परित्याग किया था।

प्रश्न 47 – पूज्य माताजी की क्षुल्लिका दीक्षा कब, कहाँ और किनके द्वारा हुई?

उत्तर – सन् 1953 में चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र में आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज के करकमलों द्वारा हुई।

प्रश्न 48 – परमपूज्य ज्ञानमती माताजी ने चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज के दर्शन कब और कहाँ किये?

उत्तर – सन् 1954 में नीरा (महाराष्ट्र) में, सन् 1955 में बारामती में पुनः कुंथुलगिरि में जब आचार्यश्री ने सल्लेखना धारण कर ली थी, उस समय पूज्य आचार्यश्री से पूज्य माताजी ने दीक्षा की प्रार्थना की, तब आचार्यश्री ने श्री वीरसागर जी के पास जाकर दीक्षा धारण करने की आज्ञा प्रदान की।

प्रश्न 49 – आचार्य श्री वीरसागर जी ने क्षुल्लिका वीरमती को कब और कहाँ दीक्षा दी?

उत्तर – सन् 1956 में वैशाख कृष्णा दूज को माधोराजपुरा (जयपुर) राज. में आर्यिका दीक्षा प्रदान की और ज्ञानमती यह नाम प्रदान किया।

प्रश्न 50 – आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी को दीक्षा के साथ आचार्यश्री ने क्या

शिक्षा प्रदान की?

उत्तर – उन्होंने शिक्षा दी कि ज्ञानमती जी! आप अपने नाम का ध्यान रखना।

प्रश्न 51 – पूज्य ज्ञानमती माताजी ने अपने गुरु की शिक्षा को जीवन में कैसे अवतरित किया?

उत्तर – पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने जैन वांङ्मय को अपनी आगमोक्त लेखनी से चारों अनुयोगरूप ग्रंथों का सृजन व अनुवाद करके व भक्तिरस में जैन समाज को ओतप्रोत करने के लिए सरल पद्य में सैकड़ों की संख्या में विधान आदि रचकर तथा जैन भारती, ज्ञानामृत, कातंत्र व्याकरण, त्रिलोकभास्कर, प्रवचन निर्देशिका आदि स्वाध्याय ग्रंथों तथा बच्चों के लिए जहाँ बाल विकास का सृजन किया, वहीं युवाओं के लिए भक्ति, प्रतिज्ञा, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा, जीवनदान आदि पौराणिक कथाओं को उपन्यास शैली में लिखा। आचार्य पुष्पदंत एवं आचार्य भूतबली द्वारा रचित षट्खण्डागम सूत्रों पर संस्कृत टीका करके तो इस बीसवीं सदी में नया इतिहास ही बना दिया। लगभग 250 ग्रंथों का सृजन करके अपने गुरु की शिक्षा को जीवन में साकार किया।

प्रश्न 52 – पूज्य ज्ञानमती माताजी द्वारा विकसित प्रमुख तीर्थों के नाम बताओ?

उत्तर – 1. हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप की रचना 2. अयोध्या तीर्थ 3. भगवान ऋषभदेव की दीक्षा व केवलज्ञान भूमि प्रयाग में तपस्थली तीर्थ 4. कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भगवान महावीर जन्मभूमि में नंद्यावर्त महल 5. मांगीतुंगी में 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा निर्माण की प्रेरणा।

प्रश्न 53 – वर्तमान में पूज्य माताजी की प्रेरणा से किस तीर्थ का विकास हो रहा है?

उत्तर – भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकंदी तीर्थ का।

प्रश्न 54 – आचार्य श्री वीरसागर महाराज के प्रमुख शिष्यों के नाम बताओ?

उत्तर – मुनि श्री शिवसागर जी, मुनि श्री धर्मसागर जी, मुनि श्री पद्मसागर जी, मुनि श्री जयसागर जी, मुनि श्री सन्मतिसागर जी, मुनि श्री श्रुतसागर जी आदि।

प्रश्न 55 – पूज्य आचार्यश्री द्वारा दीक्षित प्रमुख आर्यिकाओं के नाम बताओ?

उत्तर – आर्यिका श्री वीरमती माताजी, परम विदुषी गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी, गणिनी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी

आदि आर्यिकाओं में विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त हुई हैं।

प्रश्न 56 – आचार्यश्री वीरसागर जी द्वारा कहे जाने वाले बड़े रोगों के नाम बताओ?

उत्तर – आचार्यश्री अपने शिष्यों को हमेशा कहा करते थे कि मेरे को दो रोग हैं-1. भूख लगती है 2. नींद आती है।

प्रश्न 57 – आचार्यश्री कितने मूलगुणों का पालन करते थे?

उत्तर – आचार्यरत्न के आठ गुण, बारह तप, स्थितिकल्प के दश और छह आवश्यक ऐसे 36 मूलगुण पालन करते थे।

प्रश्न 58 – आचारत्वादि के आठ गुणों के नाम बताओ?

उत्तर – 1. आचारी 2. आधारी 3. व्यवहारी 4. प्रकारक 5. आयापायादिक 6. उत्पीड़न 7. अपरिस्रावी 8. सुखावह।

प्रश्न 59 – बारह तपों के नाम बताओ?

उत्तर – 1. अनशन 2. अवमौदर्य 3. वृत्तिपरिसंख्यान 4. रसपरित्याग 5. विविक्तशय्यासन 6. कायक्लेश ये छह बाह्य तप एवं 7. प्रायश्चित्त 8. विनय 9. वैयावृत्य 10. स्वाध्याय 11. व्युत्सर्ग 12. ध्यान ये छह अंतरंग तप हैं।

प्रश्न 60 – स्थितिकल्प के दस भेदों के नाम बताओ?

उत्तर – 1. आचेलक्य 2. औद्देशिक 3. शय्याधर 4. पिंडत्याग 5. राजकीय पिंडत्याग 6. कृतिकर्म 7. व्रतारोपण योग्यता 8. ज्येष्ठता 9. प्रतिक्रमण मासैकवासिता 10. वार्षिक योग ये दश स्थितिकल्प गुण हैं।

प्रश्न 61 – छह आवश्यक के नाम बताओ?

उत्तर – 1. समता 2. स्तुति 3. वंदना 4. प्रतिक्रमण 5. प्रत्याख्यान 6. कायोत्सर्ग

प्रश्न 62 – आचार्य परमेष्ठी के दूसरे प्रकार से 36 मूलगुण कौन-कौन माने गये हैं?

उत्तर – बारह तप, दश धर्म, पांच आचार, छह आवश्यक क्रिया और तीन गुप्ति ये 36 मूलगुण भी माने गये हैं।

प्रश्न 63 – आचार्यश्री वीरसागर जी के विशेष प्रसिद्ध गुण बताओ?

उत्तर – गंभीर, प्रतापशाली, मितभाषी और अल्प कुतूहली ये प्रमुख प्रसिद्ध गुण रहे।

प्रश्न 64 – आचार्यश्री वीरसागर द्वारा दीक्षित कुल कितने साधु हुए हैं?

उत्तर – कुल 29 दीक्षित साधु थे।

प्रश्न 65 – आचार्यश्री द्वारा दीक्षित मुनियों के नाम बताओ?

उत्तर – 108 मुनि श्री शिवसागर जी, 108 मुनि श्री सुमतिसागर जी, 108 मुनि श्री धर्मसागर जी, 108 मुनि श्री जयसागर जी।

प्रश्न 66 – आचार्यश्री द्वारा दीक्षित आर्यिकाओं के नाम?

उत्तर – 105 आर्यिका श्री वीरमती माताजी, 105 आर्यिका श्री कुंथमती माताजी (नांदगांव), 105 आर्यिका श्री कुंथुमती माताजी, 105 आर्यिका श्री सिद्धमती माताजी, 105 आर्यिका श्री अजितमती माताजी, 105 आर्यिका श्री शांतिमती माताजी, 105 आर्यिका श्री सुमतिमती माताजी, 105 आर्यिका श्री पार्श्वमती माताजी, 105 आर्यिका श्री विमलमती माताजी, 105 आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी, 105 आर्यिका श्री वासमती माताजी, 105 गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी, 105 गणिनी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी।

प्रश्न 67 – आचार्यश्री द्वारा दीक्षित ऐलक जी का नाम?

उत्तर – 105 ऐलक श्री अजितसागर जी महाराज।

प्रश्न 68 – आचार्य श्री द्वारा दीक्षित क्षुल्लकों के नाम?

उत्तर – 105 क्षुल्लक श्री सुमतिकीर्ति जी महाराज, 105 क्षुल्लक श्री चिदानंदसागर जी महाराज, 105 क्षुल्लक श्री सुमतिसागर जी महाराज, 105 क्षुल्लक श्री जयसागर जी महाराज, 105 क्षुल्लक श्री सिद्धसागर जी महाराज, 105 क्षुल्लक श्री सन्मतिसागर जी महाराज।

प्रश्न 69 – आचार्यश्री द्वारा दीक्षित क्षुल्लिकाओं के नाम?

उत्तर – 105 क्षुल्लिका श्री अनन्तमती माताजी, 105 क्षुल्लिका श्री चन्द्रमती माताजी, 105 क्षुल्लिका श्री शांतिमती माताजी, 105 क्षुल्लिका श्री गुणमती माताजी, 105 क्षुल्लिका श्री जिनमती माताजी, 105 क्षुल्लिका श्री चन्द्रमती माताजी-जयपुर।

प्रश्न 70 – आचार्यश्री से सप्तम प्रतिमा के व्रत लेने वास्ते कितने श्रावक थे?

उत्तर – ब्र. श्री गुलाबचंद आदि 21 श्रावक रहे।

प्रश्न 71 – आचार्यश्री से सप्तम प्रतिमा लेने वाली श्राविकाएं कितनी रहीं?

उत्तर – ब्र.श्री केशरबाई, कमलाबाई, श्री महावीर जी आदि 50 श्राविकाएं रहीं।

प्रश्न 72 – आचार्यश्री से 6 प्रतिमाओं के व्रत लेने वाले कितने श्रावक-श्राविकाएं रहीं?

उत्तर –श्रीमती सोहनबाई-म्हसवड़ आदि 9 श्रावक-श्राविकाएं रहीं।

प्रश्न 73 –आचार्यश्री द्वारा प्रदत्त 5 प्रतिमाधारी कितने श्रावक-श्राविकाएं रहीं?

उत्तर –श्रीमती चमेली बाई-कारंजा आदि श्राविकाएं व हीरालाल जी पहाड़े-कन्नड़ आदि श्रावक कुल 8 रहे।

प्रश्न 74 –आचार्यश्री द्वारा प्रदत्त 4 प्रतिमाधारी के नाम?

उत्तर –श्रीमान सेठ माधोलाल जी अजमेर रहे।

प्रश्न 75 –आचार्यश्री द्वारा प्रदत्त 3 प्रतिमाधारी के नाम?

उत्तर –स्व. श्री जेठमल जी गंगवाल-सुजानगढ़ व श्री हीरालाल जी पाटनी-निवाई रहे।

प्रश्न 76 –आचार्यश्री द्वारा प्रदत्त 2 प्रतिमाधारियों की संख्या बताओ?

उत्तर –श्री जमनालाल जी-जयपुर आदि 97 श्रावक-श्राविकाओं ने 2 प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये थे।

प्रश्न 77 –आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज द्वारा दीक्षित कुल कितने साधु आर्यिकाएं-श्रावक-श्राविकाएं-प्रतिमाधारी-त्यागीगण रहे?

उत्तर –आचार्यश्री द्वारा मोक्षमार्ग में लगने वाले लगभग 237 त्यागीगण रहे।

प्रश्न 78 –मुनि श्री शिवसागर जी महाराज का जन्म कब और कहाँ हुआ?

उत्तर –महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद जिला के अडगांव में।

प्रश्न 79 –आपके माता-पिता का नाम बताओ?

उत्तर –माता श्रीमती दगड़ाबाई और पिता श्री नेमीचंद रांवका।

प्रश्न 80 –मुनि श्री शिवसागर कितने भाई-बहन थे?

उत्तर –आप दो भाई, दो बहन थे।

प्रश्न 81 –आपके शिक्षा गुरु कौन थे?

उत्तर –ब्र. श्री हीरालाल जी (आचार्य श्री वीरसागर जी)

प्रश्न 82 –आपकी लौकिक शिक्षा कहाँ तक हुई?

उत्तर –कक्षा 3 तक।

प्रश्न 83 –आपके वैराग्य का क्या कारण रहा?

उत्तर –बचपन में ही माता-पिता का स्वर्गवास प्रमुख कारण रहा।

प्रश्न 84 –आपने प्रथम व्रत किससे लिए?

उत्तर –चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज से दो प्रतिमा के व्रत लिए।

प्रश्न 85 –मुनि श्री शिवसागर जी ने सप्तम प्रतिमा के व्रत कब, कहाँ और किससे लिए?

उत्तर –वि.सं. 1999 मुनि श्री वीरसागर जी से मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र पर सप्तम प्रतिमा के व्रत धारण किए।

प्रश्न 86 –मुनिश्री शिवसागर जी की क्षुल्लक दीक्षा कब और कहाँ हुई?

उत्तर –वि.सं. 2000 में सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र पर क्षुल्लक दीक्षा आचार्य वीरसागर जी द्वारा हुई।

प्रश्न 87 –क्षुल्लक श्री शिवसागर जी की मुनिदीक्षा कब और कहाँ हुई?

उत्तर –वि.सं. 2006 में नागौर (राज.) में आचार्यश्री वीरसागर जी के करकमलों द्वारा मुनिदीक्षा सम्पन्न हुई।

प्रश्न 88 –आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज तेरापंथी और बीसपंथी की क्या व्याख्या करते थे?

उत्तर –आचार्यश्री कहते थे कि हम मुनि तेरह प्रकार का चारित्र पालते हैं अतः (5 महाव्रत, 5 समिति, 3 गुप्ति) हम तेरहपंथी हैं और श्रावक (अष्टमूलगुण, 5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत और 4 शिक्षाव्रत) इन बीसव्रतों को धारण करने से बीसपंथी हैं।

प्रश्न 89 –आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज का आखिरी चातुर्मास कहाँ हुआ?

उत्तर –जयपुर-खानियां (राज.) में हुआ।

प्रश्न 90 –आचार्यश्री वीरसागर जी की सल्लेखना कब हुई?

उत्तर –वि.सं. 2014 (सन् 1957 में) आश्विन कृष्णा अमावस्या को खानियां-जयपुर (राज.) में चतुर्विध संघ के सानिध्य में।

प्रश्न 91 –आचार्यश्री शिवसागर जी के पट्टाचार्य कौन बने?

उत्तर –आचार्यश्री 108 धर्मसागर जी महाराज।

प्रश्न 92 –आचार्यश्री धर्मसागर जी का जन्म कहाँ हुआ?

उत्तर –राजस्थान के बूंदी जिला के गंभीरा ग्राम में जन्म हुआ।

प्रश्न 93 –आपके माता-पिता का क्या नाम था?

उत्तर –पिता श्री वख्तावरमल जी एवं माता श्रीमती तुंभरावबाई थीं।

प्रश्न 94 –आपके बचपन का क्या नाम था?

उत्तर –बचपन का नाम चिरंजीलाल था।

प्रश्न 95 –क्या आपका विवाह हुआ था?

उत्तर –नहीं, आप बालब्रह्मचारी रहे।

प्रश्न 96 – श्री चिरंजीलाल की दीक्षा कब और कहाँ हुई?
उत्तर – महाराष्ट्र प्रान्त के बालूज ग्राम में वि. सं. 2001 में।
प्रश्न 97 – ब्र. श्री चिरंजीलाल जी ने किससे क्षुल्लिका दीक्षा प्राप्त की?
उत्तर – आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागर जी महाराज से।
प्रश्न 98 – आपका क्षुल्लक अवस्था का क्या नाम था?
उत्तर – क्षुल्लक श्री भद्रसागर जी महाराज।
प्रश्न 99 – आपकी ऐलक दीक्षा कहाँ हुई?
उत्तर – फुलेरा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय आपको ऐलक दीक्षा प्राप्त हुई।
प्रश्न 100 – आपके ऐलक दीक्षा गुरु का नाम बताओ?
उत्तर – आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज।
प्रश्न 101 – आपने जैनेश्वरी दिगम्बर मुनि दीक्षा कब प्राप्त की?
उत्तर – वि.सं. 2008 कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी को।
प्रश्न 102 – आपके मुनिदीक्षा गुरु कौन रहे?
उत्तर – आचार्यश्री 108 वीरसागर जी महाराज।
प्रश्न 103 – मुनिश्री धर्मसागर जी को आचार्यपद कहाँ प्रदान किया गया?
उत्तर – वि.सं. 2025 में श्री महावीर जी शांतिवीर नगर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव के पावन अवसर पर।
प्रश्न 104 – आचार्यश्री धर्मसागर जी की समाधि कहाँ हुई?
उत्तर – सन् 1987 में सीकर (राज.) में।
प्रश्न 105 – आचार्यश्री धर्मसागर जी का आचार्यपट्ट किसको प्राप्त हुआ?
उत्तर – आचार्यश्री धर्मसागर जी की समाधि के बाद मुनि श्री अजितसागर जी महाराज को चतुर्विध संघ के सानिध्य में आचार्यपद प्रदान किया। 7 जून 1987 को उदयपुर (राज.) में।
प्रश्न 106 – आचार्य अजितसागर जी का जन्म कहाँ हुआ?
उत्तर – वि.सं. 1982 में म.प्र. की भोपाल राजधानी के निकट आष्टा नामक कस्बे में आपका जन्म हुआ।
प्रश्न 107 – आपके माता-पिता का क्या नाम था?
उत्तर – पद्मावती पुरवाल लाला श्री जबरचंद जी पिता श्री और श्रीमती रूपाबाई मातुःश्री के आप लाल थे।
प्रश्न 108 – आपके गृहस्थावस्था का क्या नाम था?

उत्तर – श्री राजमल जी जैन।
प्रश्न 109 – आपने गृहत्याग कब किया?
उत्तर – आपने 17 वर्ष की अल्पायु में आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की सत्प्रेरणा से गृहत्याग किया और संघ में सम्मिलित हो गये।
प्रश्न 110 – आपने सप्तम प्रतिमा कब, कहाँ और किससे धारण की?
उत्तर – वि.सं. 2002 में झालरापाटन (राज.) में आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से सप्तम प्रतिमा के व्रत स्वीकार किए।
प्रश्न 111 – गृहत्याग के बाद आपने विद्या अध्ययन किससे प्राप्त किया?
उत्तर – गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी से तत्त्वार्थराजवार्तिक, गोम्मटसार (कर्मकाण्ड) पंचाध्यायी, पात्रकेशरी स्तोत्रादि अनेकों ग्रंथों का अध्ययन किया।
प्रश्न 112 – ब्र. श्री राजमल जी ने मुनि दीक्षा कब और कहाँ धारण की?
उत्तर – वि.सं. 2018 (सन् 1961), कार्तिक शुक्ला चतुर्थी को सीकर (राज.) में आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज से मुनिदीक्षा धारण की।
प्रश्न 113 – ब्र. श्री राजमल जी को मुनिदीक्षा की सत्प्रेरणा किसने प्रदान की?
उत्तर – परमपूज्य गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा मुनिदीक्षा में प्रबल निमित्त कारण बनी।
प्रश्न 114 – ब्र. राजमल जी आगे जाकर किस नाम से प्रसिद्ध हुए?
उत्तर – चतुर्थ पट्टाचार्य आचार्यश्री 108 अजितसागर जी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए।
प्रश्न 115 – क्या पंचमकाल में आज भी भावलिंगी दिगम्बर मुनि होते हैं?
उत्तर – हाँ! पंचमकाल के अंतिम समय तक भावलिंगी दिगम्बर साधु होंगे, ऐसा जो नहीं मानता, वह अज्ञानी है। ऐसा कुंदकुंददेव ने मोक्षपाहुड़ में कहा है।
प्रश्न 116 – क्या आज के मुनि तप करके इन्द्रादिक पद को प्राप्त कर सकते हैं?
उत्तर – हाँ! आज भी पंचमकाल में रत्नत्रय से शुद्ध मुनि आत्मा का ध्यान करके इन्द्रत्व और लौकांतिक देव के पद को प्राप्त कर लेते हैं और वहाँ से चयकर मनुष्य भव धारणकर दीक्षा लेकर तप द्वारा कर्मों को नाशकर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, ऐसा आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने मोक्षपाहुड़ में कहा है।

प्रश्न 117 – मुनियों के कितने भेद होते हैं?

उत्तर – मुनियों के 5 भेद होते हैं। 1. पुलाक 2. वकुश 3. कुशील 4. निर्ग्रंथ 5. स्नातक।

प्रश्न 118 – पुलाक मुनि किसे कहते हैं?

उत्तर – जो उत्तर गुणों से हीन तथा मूलगुणों में क्वचित् कदाचित दोष लगा लेते हैं, वे पुलाक मुनि कहलाते हैं।

प्रश्न 119 – वकुश मुनि का क्या लक्षण है?

उत्तर – जो मूलगुणों को तो पूर्णतया पालते हैं किन्तु शरीर के संस्कार ऋद्धि, सुख, यश और विभूति के इच्छुक होते हैं, वे वकुश मुनि कहलाते हैं।

प्रश्न 120 – कुशील साधु किसे कहते हैं?

उत्तर – कुशील मुनियों के दो भेद हैं – प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील। जो परिग्रह की भावना से सहित हैं, मूल और उत्तर गुणों में परिपूर्ण हैं किन्तु कभी-कभी उत्तर गुणों की विराधना करने वाले हैं, वे प्रतिसेवना कुशील कहलाते हैं और ग्रीष्मकाल में जो जंघा-प्रक्षालन आदि का सेवन करते हैं तथा संज्वलनमात्र कषाय के वशीभूत हैं, वे कषाय कुशील कहलाते हैं।

प्रश्न 121 – निर्ग्रंथ साधु किसे कहते हैं?

उत्तर – जल में खींची हुई रेखा के समान जिनके कर्मों का उदय अनभिव्यक्त है और जिनके अंतर्मुहूर्त में ही केवलज्ञान होने वाला है, वे निर्ग्रंथ संत होते हैं, ये बारहवें गुणस्थानवर्ती ही होते हैं।

प्रश्न 122 – स्नातक साधु किसे कहते हैं?

उत्तर – तेरहवें गुणस्थानवर्ती केवली भगवान को स्नातक कहते हैं।

प्रश्न 123 – आचार्य अजितसागर जी के बाद आचार्यपद किसको प्राप्त हुआ?

उत्तर – आचार्यश्री श्रेयांससागर जी को आचार्यपद पर चतुर्विध संघ ने प्रतिष्ठित किया।

प्रश्न 124 – चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज के आचार्य-पट्ट परम्परा के आचार्यों के नाम बताओ?

उत्तर – 1. आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज 2. आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज 3. आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज 4. आचार्यश्री अजितसागर जी महाराज 5. आचार्य श्री श्रेयांससागर जी महाराज 6. आचार्य श्री अभिनंदनसागर जी महाराज।

प्रश्न 125 – वर्तमान में आचार्य शांतिसागर जी के पट्ट पर कौन से आचार्यश्री प्रतिष्ठित हैं?

उत्तर – परमपूज्य आचार्य 108 श्री अभिनंदनसागर जी महाराज इस पट्ट पर आसीन होकर धर्मप्रभावना कर रहे हैं।

नोट *– यहाँ विशेष ज्ञातव्य है कि चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की परम्परा में चतुर्थ पट्टाचार्य श्री अजितसागर जी महाराज की समाधि के पश्चात् पंचम पट्टाचार्य के पद पर आचार्यश्री श्रेयांससागर महाराज एवं आचार्य श्री वर्धमानसागर महाराज अभिषिक्त हुए हैं। अतः सन् 1990 से इस परम्परा के दो आचार्य बन गये हैं। उन दोनों की परम्पराएं चल रही हैं। उनमें से प्रथम पंचम पट्टाचार्य श्री श्रेयांससागर महाराज की समाधि के बाद षष्ठम् पट्टाचार्य के रूप में आचार्यश्री अभिनंदनसागर महाराज चतुर्विध संघ का नेतृत्व कर रहे हैं।*

प्रश्न 126 – वर्तमान में आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से संबंधित क्या मनाया जा रहा है?

उत्तर – आचार्यश्री वीरसागर वर्ष।

प्रश्न 127 – यह वर्ष कब से प्रारंभ हुआ है?

उत्तर – आसोज शु. पूर्णिमा, 11 अक्टूबर 2011 से।

प्रश्न 128 – कब तक यह वर्ष मनाया जायेगा?

उत्तर – आश्विन शुक्ला पूर्णिमा, 29 अक्टूबर 2012 तक।

प्रश्न 129 – इस वर्ष को मनाने की प्रेरणा किनने प्रदान की?

उत्तर – पूज्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की प्रमुख शिष्या गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने।

प्रश्न 130 – इस वर्ष को मनाने का मुख्य उद्देश्य क्या है?

उत्तर – जन-जन को आचार्यश्री के स्वर्णिम व्यक्तित्व से परिचित कराना ही इस वर्ष का प्रमुख उद्देश्य है।

प्रश्न 131 – हम श्रावकों को इसके अन्तर्गत क्या करना है?

उत्तर – अपने-अपने गाँव-नगर में आचार्यश्री के जीवन से संबंधित संगोष्ठी, प्रश्नमंच, भाषण प्रतियोगिता, निबंध प्रतियोगिता आदि का आयोजन तथा वीरसागर विधान, पूजन, चालीसा, भजन, आरती आदि करके अपनी गुरुभक्ति का परिचय प्रदान करना है।

पूज्य आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज द्वारा किए गए चातुर्मास

(वि.सं. 1980, ईसवी सन् 1923 से वि.सं. 2014, ईसवी सन् 1957 तक)

चातुर्मास स्थल	विक्रम संवत्	ईसवी सन्
1. श्रवणबेलगोल	1980	1923
2. कुंभोज नगर	1981	1924
3. समडोली	1982	1925
4. बड़ी नांदनी	1983	1926
5. कटनी	1984	1927
6. मथुरा	1985	1928
7. ललितपुर	1986	1929
8. जयपुर	1987	1930
9. ब्यावर	1988	1931
10. प्रतापगढ़	1989	1932
11. उदयपुर	1990	1933
12. दिल्ली	1991	1934
13. ईडर (गुज.)	1992	1935
14. पेथापुर (गुज.)	1993	1936
15. टांकाटूका (गुज.)	1994	1937
16. इन्दौर (म.प्र.)	1995	1938
17. इन्दौर (म.प्र.)	1996	1939
18. अतिशय क्षेत्र कचनेर	1997	1940
19. कन्नड़ ग्राम (निमाज)	1998	1941
20. कारंजा (महा.)	1999	1942
21. खातेगांव	2000	1943
22. उज्जैन	2001	1944
23. झालरापाटन	2002	1945
24. रामगंजमण्डी	2003	1946
25. नैनवां	2004	1947
26. बनेठा	2005	1948
27. नागौर (राज.)	2006	1949
28. सुजानगढ़	2007	1950
29. फुलेरा	2008	1951
30. ईसरी	2009	1952
31. निवाई	2010	1953
32. टोडारायसिंह	2011	1954
33. जयपुर खानियां	2012	1955
34. जयपुर खानियां	2013	1956
35. जयपुर खानियां	2014	1957

आचार्य श्रीवीरसागर महाराज की पूजन

—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी

स्थापना-

महावीर पथ के अनुयायी, वीरसिन्धु आचार्यप्रवर।
शान्ति सिन्धु के प्रथम शिष्य, आर्यिका ज्ञानमति के गुरुवर।।
उन गुरू शिष्य की गरिमा से, लगता है यह अनुमान सहज।
तुम थे असली रत्नपारखी, दृष्टि तुम्हारी सदा सजग।।1।।

उन आचार्य वीरसागर की, पूजा आज रचाऊँ मैं।
आह्वानन स्थापन करके, अपने निकट बुलाऊँ मैं।।
हे गुरुवर! मम हृदय विराजो, अभिलाषा यह है मेरी।
पुष्पों की अंजलि भरकर के, करूँ थापना मैं तेरी।।2।।

-दोहा-

गुरुपूजा बस एकली, गुरुपद देन समर्थ।
भवदधि नौका सम यही, शेष सभी कुछ व्यर्थ।।3।।

ॐ ह्रीं श्रीवीरसागराचार्यवर्य ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीवीरसागराचार्यवर्य ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीवीरसागराचार्यवर्य ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

-अष्टक-

जग के शीतल स्वादिष्ट पेय से, प्यास नहीं बुझ पाई है।
अतएव वीतरागी गुरु के, चरणों की स्मृति आई है।।
जलधारा करने से शायद, इच्छाओं की उपशान्ती हो।
उन तृषा परीषहजयी गुरू की, पूजा से सुख प्राप्ती हो।।

ॐ ह्रीं आचार्यश्रीवीरसागरमुनीन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन गुलाबजल इत्रादिक से, कायउष्णता शांत हुई।
पर कर्मों की जलती ज्वाला से, आत्मा नहिं उपशांत हुई।।

चन्दन गुरु पद में लेपन से, भवताप की उपशान्ती होगी।
उन उष्णपरीषहविजयी की, पूजन से सुखप्राप्ती होगी।।

ॐ ह्रीं आचार्यश्रीवीरसागरमुनीन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

चारों गतियों में क्षत विक्षत, कायों में भी मैं पड़ा रहा।
अक्षय आतम नहिं पहचाना, भव चतुष्पथों पर खड़ा रहा।।
अब अक्षतपुंज सुगुरु चरणों में, अर्पण करने आया हूँ।
अक्षय सुख पाने हेतु दिगम्बर, मुनि को नमने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं आचार्यश्रीवीरसागरमुनीन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मकरध्वज ने सारे जग को, निज के आधीन बनाया है।
पर बालब्रह्मचारी के सम्मुख, वह न कभी टिक पाया है।।
अब पुष्प चढ़ाऊँ गुरु चरणों में, काम व्यथा नश जाएगी।
उन नग्न परीषह विजयी गुरु की, पूजा शान्ति दिलाएगी।।

ॐ ह्रीं आचार्यश्रीवीरसागरमुनीन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रसना इन्द्रिय की लोलुपता, कितने ही पाप कराती है।
भोजन करने के बाद भी वह, लम्पटता नहिं मिट पाती है।।
अब इस नैवेद्य थाल से गुरु, पूजन कर क्षुधा शांत होगी।
उन क्षुधा परीषह विजयी मुनि, वन्दन से परमशांति होगी।।

ॐ ह्रीं आचार्यश्रीवीरसागरमुनीन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब तरह तरह के फानूसों से, महल सजाए जाते हैं।
चंचल विद्युत के नवप्रकाश, आतम के दीप बुझाते हैं।।
अब घृत के लघु दीपक से भी, गुरु आरति मोह नशाएगी।
उन प्रज्ञापरिषह विजयी गुरु की, पूजन शांति दिलाएगी।।

ॐ ह्रीं आचार्यश्रीवीरसागरमुनीन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ईश्वर नहिं सृष्टि का कर्त्ता, यह जैनागम बतलाते हैं।
सब जीवों के ही कर्म स्वयं, उनको सुख दुख दिलवाते हैं।।
उन कर्मों के नाशन हेतू, गुरुवर ने मुनिपथ अपनाया।
मैं भी अब धूप जलाकर चाहूँ, निज गुरु की शाश्वत छाया।।

ॐ ह्रीं आचार्यश्रीवीरसागरमुनीन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल की इच्छा से ही सुभौम, चक्री की बुद्धी भ्रष्ट हुई।
नश्वर फल खाने में ही उसकी, जीवन लीला नष्ट हुई।।
मैं अविनश्वर फल हेतू अब, फल का यह थाल सजा लाया।
गुरु चरणों में फलथाल चढ़ाकर, तजूँ जगत ममता माया।।

ॐ ह्रीं आचार्यश्रीवीरसागरमुनीन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

यह अष्टद्रव्य की सामग्री, मेरी पूजा का साधन है।
गुरु भक्ती ही कर सकती बस, दुर्गति का सहज निवारण है।।
आचार्य वीरसागर गुरु की, जो पूजा निशदिन करते हैं।
वे पूजक भी पुण्यास्रव कर, इक दिन अनर्घ्य पद वरते हैं।।

ॐ ह्रीं आचार्यश्रीवीरसागरमुनीन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- **रत्नत्रय धारक मुनी, के पद में त्रय बार।**
त्रयधारा जल से करूँ, मिले रत्नत्रय सार।।

शान्तये शान्तिधारा।

गुरुवर के उद्यान से, ज्ञान पुष्प को लाय।
पुष्पांजलि पद में करूँ, ज्ञान मुझे मिल जाय।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जयमाला

हे मुनिवर! तुम कुछ बोले बिन, भी मोक्षमार्ग दरशाते हो।
बिन वस्त्राभूषण के भी तुम, सुन्दर स्वरूप दरशाते हो।।
तुम ब्रह्मचर्य की महिमा का, पावन दर्शन करवाते हो।
शिशु सम अविकारी नग्न रूपधर, सबके मित्र कहाते हो।।1।।

महाराष्ट्र प्रान्त में ईर ग्राम, माँ भाग्यवती जी कहलाई।
इक दिन सुन्दर सपना देखा, तब उनकी बगिया लहराई।।
थे पिता रामसुख हुये सुखी, आषाढ़ शुक्ल पूनम तिथि में।
वह तिथी गुरुपूर्णिमा बनी, सन् अट्ठारह सौ छियत्तर में।।2।।

बचपन में हीरालाल नाम, पाया हीरा सम चमक उठे।
कचनेर में विद्याध्ययन करा, पहले ही गुरु बन दमक उठे।।
चारित्रचक्रवर्ती गुरु को, परखा फिर गुरू बनाया था।
उनकी ही प्रथम शिष्यता का, सौभाग्य तुम्हीं ने पाया था।।3।।

गुरु ने समाधि से पूर्व तुम्हें, निज पट्टाचार्य बनाया था।
सन् उन्निस सौ पचपन जयपुर में, प्रथम पट्ट अपनाया था।।
जैसे तव गुरु ने मुनि पथ को, बीसवीं सदी में दरशाया।
वैसे ही ज्ञानमती शिष्या ने, ब्राह्मी का पथ दिखलाया।।4।।

मुनि समन्तभद्राचार्य सदृश, तुम हुए परीक्षा में प्रधान।
गुरु मर्यादा की रक्षा कर, शिष्यों का रक्खा सदा ध्यान।।
तुमने इक बार कर्मप्रकृती, चिन्तन में निज को रमा दिया।
फोड़ा अदीठ का वैद्यराज, आप्रेशन करके चला गया।।5।।

सोचो तो रोम सिहरते हैं, क्या तुम पत्थर की मूरत थे।
मानव की काया में सचमुच, महावीर की सच्ची सूरत थे।।
गुरुदेव मुझे भी शक्ती दो, तन से ममता को छोड़ सकूँ।
संकट चाहे जितने आवें, सबसे मैं नाता तोड़ सकूँ।।6।।

सन् सत्तावन में आश्विन कृष्णा, मावस को तुम चले गये।
अपने शिष्यों को छोड़ समाधी, लिया स्वर्ग में चले गये।।
अब नहीं तुम्हारी काया है, लेकिन यशकाया जीवित है।
हम सभी तुम्हारी वंशावलि के, पत्र पुष्पमय कीरत हैं।।7।।

हे शांति सिन्धु के प्रथम शिष्य! तुमको युग का शत बार नमन।
तुम पहले पट्टाचार्य तुम्हारे, चरणों में चउसंघ नमन।।
गुणमाल आपकी पढ़कर के, मेरा मन आज हुआ पावन।
''चन्दनामती'' तुम चरणों में, धरती अम्बर भी करे नमन।।8।।

ॐ ह्रीं आचार्यश्रीवीरसागरमुनीन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तये शान्तिधारा, पुष्पांजलिः

गीता छन्द- **मुनि वीरसागर के चरण में, जो सतत वन्दन करें।**
निज आत्मनिधि को प्राप्त कर, वे भी रत्नत्रय निधि वरें।।
निज आत्मरस के स्वाद में हो, मग्न यदि समता धरें।
तब ''चन्दनामति'' उभय लोकों, में वही सब सुख भरें।।

।। इत्याशीर्वादः।।

आचार्य श्री वीरसागर चालीसा

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी

।। शंभु छन्द ।।

श्री देवशास्त्र गुरु वन्दन कर, पूर्वाचार्यों को नमन करूँ।
श्री कुन्दकुन्द की परम्परा में, शान्ति सिन्धु को नमन करूँ।।
उन प्रथम शिष्य पट्टाधिपती, आचार्य वीरसागर जी थे।
प्रभु महावीर के लघुनन्दन, छत्तिस गुण रत्नाकर ही थे।।1।।

।। दोहा ।।

गुरु चरणों में नमन कर, करूँ सदा गुणगान।
चालीसा का पठन कर, लहूँ आत्मविज्ञान।।2।।

।। चौपाई ।।

जय हो नग्न दिगम्बर मुनिवर, सत्यपंथ के धारक गुरुवर।।1।।
बिन बोले शिवपथ बतलाते, काया से जिनमत दर्शाते।।2।।
ब्रह्मचर्य की महिमा न्यारी, शिशु सम जातरूप अविकारी।।3।।
महाराष्ट्र के ''ईर'' ग्राम में, सेठ रामसुख के सुधाम में।।4।।
भाग्यवती का भाग्य खुल गया, नगरी का सौभाग्य खिल गया।।5।।
थी आषाढ़ शुक्ल की पूनम, गुरु पूर्णिमा कहें जिसको हम।।6।।
अट्ठारह सौ छियत्तर सन् में, हीरालाल नाम बचपन में।।7।।
हीरा और लाल बन चमके, मणियों की आभा सम दमके।।8।।
यौवन में नहिं ब्याह रचाया, ब्रह्मचर्य व्रत को अपनाया।।9।।
समन्तभद्राचार्य सदृश थे, गुरु परीक्षा में वे प्रमुख थे।।10।।
शान्तिसिन्धु के सन्निध जाकर, मस्तक नहीं झुकाया वहाँ पर।।11।।
चर्चा करने बैठे उनसे, बोले तुम मुनि नहिं पहले से।।12।।
गुरु ने पूछा प्रश्न उन्हीं से, कहो सामने वृक्ष कौन है?।।13।।
बोले आम्रवृक्ष कहलाता, मौसम में यह फल है लाता।।14।।
शान्तिसिन्धु ने वचन उचारे, ऐसे ही हम मुनिवर प्यारे।।15।।
मोक्ष का जब मौसम आयेगा, यही रूप तब फल लायेगा।।16।।
यह उत्तर सुन शिष्य प्रवर ने, कहा प्रभो! अब जाना मैंने।।17।।
आज मोक्ष नहिं तो भी मार्ग है, खुला मोक्ष का क्रमिक द्वार है।।18।।

हे गुरुदेव! समर्पित हूँ अब, शिष्य बना लो मुझे आप अब।।19।।
सन् उन्निस सौ चौबिस में फिर, गुरु से ले ली दीक्षा मुनिवर।।20।।
दस वर्षों तक गुरु सन्निध में, रत्नत्रय पाला चउसंघ में।।21।।
पुनः मिली आज्ञा विहार की, जैन धर्म के शुभ प्रचार की।।22।।
मिलते रहते थे आपस में, शिष्य-गुरू सम्बन्ध प्रबल थे।।23।।
संघ चतुर्विध बना तुम्हारा, भारत भर में था जो प्यारा।।24।।
तत्त्वज्ञान था भरा हृदय में, रहते नित स्वाध्याय मगन थे।।25।।
हुआ बड़ा फोड़ा अदीठ का, सभी संघ का मन कम्पा था।।26।।
कैसे सहन वेदना करते, भक्त सभी रो रो कर कहते।।27।।
डाक्टर ने आप्रेशन करके, देखी दृढ़ता वे भी चकित थे।।28।।
समयसार का दृश्य दिखाया, शुद्धात्मा का सार बताया।।29।।
शिष्यों का दुख दर्द पूछते, वत्सलता से उन्हें देखते।।30।।
सन् पचपन में गुरुवर का पद, पाया तब आचार्य कहें सब।।31।।
सन् छप्पन में एक परीक्षा, लेकर दी थी इक शुभ दीक्षा।।2।।
पहली क्वांरी कन्या आई, तुमसे आर्यिका दीक्षा पाई।।33।।
ज्ञानमती यह नाम उचारा, बालसती का पथ विस्तारा।।34।।
जयपुर में सन् सत्तावन का, चातुर्मास हुआ गुरुवर का।।35।।
आश्विन कृष्ण अमावस आई, सूरिप्रवर की हुई विदाई।।36।।
तन से आत्मा पृथक् हो गई, मुख्य लक्ष्य की सिद्धि हो गई।।37।।
जयपुर खान्या में प्रतीक है, चरण चिन्ह जहाँ पर निर्मित है।।38।।
प्रथम पट्टसूरी के पद में, मेरी शब्दांजलि अर्पित है।।39।।
परम्परा से मुक्ति मिलेगी, इस भव में गुरुभक्ति मिलेगी।।40।।

दोहा- वीरसिन्धु आचार्य का, यह चालीसा पाठ।
पढ़ते जो श्रद्धा सहित, वे पाते निज ठाठ।।1।।
वीर संवत् पच्चीस सौ, बाइस शुभ तिथि जान।
भादों सुदि दुतिया तिथि, लेते सब गुरुनाम।।2।।
ज्ञानमती गणिनी प्रमुख, की शिष्या अज्ञान।
रचा ''चन्दनामति'' सुखद, यह गुरुवर गुणगान।।3।।

''वीर गाँव के वीरसागर''

(एक नाटक)

(महाराष्ट्र प्रांत के औरंगाबाद जिले में एक छोटे से कस्बे वीर नामक ग्राम में रामसुख नाम के एक श्रेष्ठी रहा करते थे। उन्होंने ''भाग्यवती'' नाम की धर्मपत्नी को पाकर मानो सचमुच ही राम जैसे सुख को प्राप्त कर लिया था। गंगवाल गोत्रीय ये दम्पत्ति श्रावक कुल के शिरोमणि थे। प्रतिदिन मंदिर में जाकर देवदर्शन करना, भक्ति, पूजा आदि उनके जीवन के आवश्यक अंग थे।

बंधुओं! माता-पिता के संस्कार बालक के ऊपर आना स्वाभाविक बात है। एक रात्रि में भाग्यवती सुख की निद्रा में सोई हुई थीं, तभी रात्रि के पिछले प्रहर में उन्होंने स्वप्न में सफेद बैल को देखा और प्रसन्नमना हो उठ बैठी)

-प्रथम दृश्य-

भाग्यवती—(उठते हुए नौ बार णमोकार मंत्र का पाठ करती है, पुनः सोचती है)

ओह! आज मैंने सफेद बैल को देखा है। हो सकता है कोई होनहार बालक मेरे गर्भ में आने वाला हो। चलूँ। चलकर गुलाबचंद के पिता को बताऊँ। (खुश होती हुई आगे बढ़ जाती है)

(रामसुख जी कमरे में बैठे हैं, वह वहाँ पहुँचकर अपने स्वप्न को बताती है)

भाग्यवती—सुनिए, गुलाब के पिताजी! मैंने आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में सपने में एक सफेद बैल देखा है।

रामसुख—(स्नेहपूर्वक पत्नी को देखते हुए) भागू! ऐसा लगता है कि तुम एक होनहार बालक की माँ बनने वाली हो। हो सकता है कि संसार में वह बालक तुम्हारे मातृत्व की ख्याति फैलाकर श्वेत वृषभ के समान कीर्ति वाला बन जाये।

(भाग्यवती लज्जापूर्वक सिर झुकाकर पति के चरण स्पर्श करती है और प्रथम पुत्र गुलाबचंद के साथ मंदिर जाती है और खुशी के आवेश में बहुत देर तक भगवान की भक्ति-पूजा करती है। इस तरह देखते-देखते नौ माह व्यतीत होने लगे, भाग्यवती को चूँकि तीर्थ वंदना का दोहला हुआ था, अतः वह पति के साथ सिद्धक्षेत्र, अतिशयक्षेत्र आदि की वंदना के लिए गई। देखते-देखते नौ माह व्यतीत हो गए। वि.सं. 1933, ईसवी सन् 1876 में आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन भाग्यवती ने एक अपूर्व चाँद जैसे बेटे को जन्म दिया। उस समय सारे गाँव में खुशियाँ मनाई गईं और पुत्र जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में सेठ रामसुख ने गरीबों को

खूब दान बाँटा। उन्होंने इस होनहार बालक का नाम रखा-''हीरालाल''। यथा नाम तथा गुण के अनुसार हीरा सचमुच हीरा था, देखते-देखते वह बालक 8 वर्ष का हो गया और शुभ मुहूर्त में उपनयन संस्कार से संस्कारित होकर श्रावक बन गया। पाठशाला में उसकी विलक्षण बुद्धि देख सब चकित रह जाते थे।

-द्वितीय दृश्य-

पाठशाला का दृश्य

अध्यापक–(छात्रों से) प्रिय बालकों! मैंने जो पाठ तुम्हें याद करने को दिया था, क्या तुम सबको याद हो गया ?

सभी बालक–जी, गुरुजी, याद हो गया।

अध्यापक–चलो भाई भीमराव, तुम सुनाओ ?

भीमराव–जी गुरु जी, वह राजा रामचन्द्र वनवास....., जी वनवास....., क्षमा करना गुरुजी, मैं भूल गया।

अध्यापक–अच्छा, अच्छा, बैठ जा, चलो बेटा सुमेरचंद तुम सुनाओ।

सुमेरचंद–जी....., वो गुरु जी, क्या हुआ ? कल जब मैं यहाँ से घर गया, तो पाठ याद करना ही भूल गया।

अध्यापक–हे भगवन्! ये बालक हैं या शैतानों की टोली। चल बेटा हीरालाल तू सुना।

हीरालाल–जी गुरु जी। कल आपने सुनाया था कि जब राजकुमार रामचन्द्र पिता के वचनों का पालन करते हुए वनवास के लिए जाने लगे, तो उन्होंने अपने समस्त राजसी वस्त्र-आभूषण त्याग दिए और पीत वस्त्र पहनकर वन की ओर चले। उस समय लक्ष्मण और सीता भी उनके साथ वन को रवाना हुए।

अध्यापक–बहुत सुन्दर बेटा! इधर आओ।

(बालक हीरालाल पास में आता है) बेटे! तुम सचमुच होनहार बालक हो (प्यार से सिर पर हाथ फेरते हैं)। हीरालाल! तुम मेरे विद्यालय का गौरव हो, ऐसा लगता है कि तुम भविष्य में बहुत महान व्यक्ति बनोगे। तुम्हारी नम्रता, तुम्हारी गंभीरता प्रत्येक बालक के लिए अनुकरणीय है। (पुनः बच्चों से) बच्चों! तुम्हें बालक हीरालाल से शिक्षा लेनी चाहिए। आज मैं इसे इस कक्षा का मानीटर बनाता हूँ। इससे कुछ सीखकर तुम सब भी अपना भविष्य उज्ज्वल बनाओ।

(बालक हीरालाल ने हिन्दी व उर्दू भाषाओं का सातवीं कक्षा तक अध्ययन

किया, पुनः पिता की आज्ञानुसार व्यापार कार्य प्रारंभ कर दिया, किन्तु व्यापार करते-करते भी चित्त से उदासीन हीरालाल अपना ज्यादा समय भगवान की पूजा, भक्ति व स्वाध्याय में व्यतीत करते थे। बेटे की उदासीनता और वैराग्य भावों को देखकर माता-पिता उन्हें विवाह बंधन में बांधने की सोचने लगे। बालक हीरालाल सुन्दर, रूपवान व बुद्धिमान तो थे ही, अब जगह-जगह से उसके रिश्ते आने लगे अतः पिताजी एक दिन हीरालाल से बोले–

(घर का दृश्य, माता-पिता कुर्सी पर बैठे हैं, हीरालाल प्रवेश करता है)

-तृतीय दृश्य-

पिता रामसुख–बेटा हीरालाल! जरा इधर तो आना।

हीरालाल–जी पिताजी! कहिए, कोई विशेष कार्य है।

रामसुख–बेटा! अब तुम युवावस्था में आ गये हो, प्रत्येक माता-पिता की तरह हम भी यही चाहते हैं कि तुम घर में आने वाली बहू का चयन स्वयं करो।

माता–हाँ मेरे लाल! मुझे तो तेरे जैसी ही सुन्दर व सुघड़ बहू चाहिए, जो हमारी कुछ सेवा कर सके।

(उस समय हीरालाल संकोचवश कुछ भी न बोल सके लेकिन ''जल तें भिन्न कमल की भांति वे संसार को असार मानते थे, अतः एक दिन संकोच छोड़कर वे माता-पिता के समक्ष पहुँच जाते हैं और पिता के चरण स्पर्श करते हुए निवेदन करते हैं–)

हीरालाल–प्रणाम पिताजी!

रामसुख–खुश रहो बेटे। कहो! क्या बात है ?

हीरालाल–पिताजी! आप व्यर्थ ही मेरे विवाह के लिए परेशान हो रहे हैं। मुझे इस संसाररूपी कीचड़ में नहीं फंसना है, मुझे तो भगवान महावीर के पथ पर चलकर अपनी आत्मा का कल्याण करना है। पिताजी! मेरा दृढ़ निश्चय है कि मैं शादी नहीं करूँगा।

(इतना सुनते ही माता-पिता दंग रह जाते हैं, तब आँखों में आंसू भरकर माँ कहती हैं–)

माता–अरे हीरा! मैंने अपनी छोटी बहू को पाने के लिए बड़े अरमान संजोए हैं। (पुनः डांटती हुई) अरे पगले! एक शब्द कहकर तू हम लोगों को निराश करना चाहता है, यह तो हर माता-पिता का कर्त्तव्य है। देख! तू हमारा दिल नहीं तोड़ेगा, ऐसा मुझे पूरा विश्वास है।

हीरालाल–(गंभीरपूर्वक माँ को समझाते हुए)-हे माँ! यही तो मोह की लीला है। पर वास्तव में न तो कोई किसी का पुत्र है और न ही कोई किसी के माता-पिता। प्रत्येक प्राणी की आत्मा भगवान आत्मा है और मुझे उसी को प्रकट करना है।

माता–(चिंतित होकर) यह क्या कह रहा है तू ?

हीरालाल–देखो माँ! मैं ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। मेरी आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि आप मुझे संसार में मत फंसाइए, मैंने तो मुक्तिरूपी कन्या को आपकी बहू बनाने का पूरा निश्चय कर लिया है, जिसे पाने के बाद बार-बार मुझे विवाह के लिए चिंता ही नहीं करनी पड़ेगी।

(पुनः माँ के चरणों में बैठकर) हे माँ! मुझे आशीर्वाद दे कि मैं इस पथ पर बिना किसी विघ्न-बाधा के बढ़ता जाऊँ।

(बेचारी माँ उसके सिर पर हाथ तो रखती है, लेकिन फूट-फूटकर रोने लगती है। इधर पिता रामसुख सोचते हैं कि क्या सचमुच मेरा बेटा मुझे छोड़कर चला जायेगा, सोचते-सोचते भावविह्वल हो उठकर उसे छाती से लगाते हुए रोने लगते हैं–

पिता रामसुख–अरे मेरे चाँद! तू समझता है कुछ, त्याग में कितने कष्ट हैं। इतना सुकुमार बालक, ब्रह्मचर्य व्रत लेना तलवार की धार पर चलने जैसा है। नहीं, नहीं, तू मुझे छोड़कर कहीं नहीं जा सकता है। बेटा! मेरी बात मान, शादी करके घर बसा ले, मेरे बुढ़ापे का सहारा बन। देख मैं तेरा वियोग सहन नहीं कर सकता।

(इतना कहकर उसे पुनः छाती से चिपकाकर रोने लगते हैं। चूँकि हीरालाल भी अब कोई नादान बालक नहीं थे। वे परिवार की सारी स्थिति को देखते हुए ब्रह्मचारी के रूप में घर में रहकर माता-पिता की सेवा करते हैं। रामसुख जी भी कुछ आश्वस्त हो जाते हैं कि चलो बहू नहीं बेटा तो हमारे पास है। घर में रहकर रसपरित्यागपूर्ण भोजन करते और शास्त्रों का मनन-चिंतन करते उन्हें कई वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। कुछ दिनों बाद रामसुख जी का स्वर्गवास हो जाता है। पितृवियोग के पश्चात् कुछ ही समय बाद माता भी स्वर्गस्थ हो गईं, अब हीरालाल के पास सबसे प्रबल संबल ज्ञान का था। बड़े भाई के पास रहते हुए अपनी मंजिल को निराबाध जानकर भी योग्य गुरु के अभाव में वे सन् 1916 में औरंगाबाद के निकट कचनेर अतिशय क्षेत्र पर धार्मिक पाठशाला खोलकर

वे बालकों को निःशुल्क अध्ययन कराने लगे और गुरु जी के नाम से मशहूर हो गये। सात वर्षों तक अध्ययन करवाकर जनमानस में जैनधर्म का खूब प्रचार-प्रसार करने के बाद सन् 1921 में उन्हें ज्ञात हुआ कि नांदगाँव में ऐलक पन्नालाल जी का चातुर्मास हो रहा है, वह दर्शन की तीव्र लालसा से वे वहाँ पहुँच जाते हैं।)

-चतुर्थ दृश्य-

हीरालाल जी–(ऐलक पन्नालाल जी के पास पहुँचकर)–इच्छामि महाराज जी!

ऐलक जी–सद्धर्मवृद्धिरस्तु।

हीरालाल जी–हे पूज्यवर! आज आपके दर्शन करके मेरा मन कृतार्थ हो गया।

ऐलक जी–हे भव्यात्मन्! कौन हो तुम, कहाँ से आए हो, तुम निश्चित ही भव्य प्राणी हो। कहो! क्या कहना चाहते हो ?

हीरालाल जी– पूज्य श्री! मैं औरंगाबाद के श्रेष्ठी रामसुख जी का पुत्र हूँ, आत्मकल्याण की भावना से आपके पास आया हूँ। कृपया मुझे सप्तम प्रतिमा के व्रत देकर कृतार्थ करें।

ऐलक जी–(पिच्छी उठाकर मंत्र पढ़ते हुए) हे वत्स! आज आषाढ़ शुक्ला ग्यारस है। आज मैं तुम्हें श्रावक के व्रत प्रदान करते हुए सप्तम प्रतिमा देता हूँ।

हीरालाल–(साष्टांग प्रणाम कर) अहो! मैं धन्य हो गया गुरुवर, मेरा जीवन सफल हो गया।

(वहाँ और भी श्रावक पास में बैठे हुए इनके वैराग्य की प्रशंसा कर रहे हैं। तभी एक श्रावक उनसे पूछता है)-

खुशालचंद–भाई! तुम्हारा ललाट तो खूब ही चमक रहा है, सचमुच वैराग्य का प्रभाव ही ऐसा है।

हीरालाल–हाँ भाई! जिसको यह अमृत मिल जाए, फिर उसके समक्ष सारे संसार के सुख फीके हैं।

खुशालचंद–अच्छा! क्या सचमुच इसमें इतना आनन्द है फिर तो मैं भी इसका रसास्वादन करना चाहूँगा।

हीरालाल–अवश्य मित्र! परन्तु आप अपने इष्ट-मित्रों से पूछ तो लें। क्या आप यहीं के निवासी हैं।

खुशालचंद—हाँ, हाँ बंधुवर! मैं यहीं का एक श्रावक खुशालचंद हूँ, आज मैं तुम्हारा अभिन्न मित्र हूँ। और देखो! मैं किसी से पूछने नहीं जाता, भला कोई वैराग्य में शीघ्रता से जाने देता है।

हीरालाल—तब तो मित्र! देर काहे की। तुम भी सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लो।

(दोनों ही सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर राम-लक्ष्मण की जोड़ी के सदृश रहकर अपने वैराग्य को वृद्धिंगत करते हुए रसपरित्याग, उपवास आदि करते थे और इसी अवस्था में ही दोनों ने घी, नमक, तेल और मीठा का जीवनपर्यंत के लिए त्याग कर दिया।

बंधुओं! कहते हैं ना, सच्चे हृदय से भाई गई भावना अवश्य ही फलीभूत होती है। एक बार हीरालाल जी को ज्ञात हुआ कि दक्षिण के कोन्नूर ग्राम में चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज विराजमान हैं। बस फिर क्या था, दोनों मित्र चल पड़े। लेकिन वे थे परीक्षाप्रधानी, सो वे करने लगे महाराज श्री की परीक्षा, देखिए होता है क्या ?)

दोनों ब्रह्मचारी वहाँ पहुँचते हैं, बहुत से श्रावकों के बीच महाराज जी बैठे हैं, वे दोनों बिना नमस्कार किए वहाँ जाकर बैठ जाते हैं। कहते हैं–

हीरालाल जी—महाराज! हम आपको सच्चा साधु नहीं मानते।

आचार्यश्री—अरे भइया! तुम मानो या ना मानो हमें कौन सा फर्क पड़ता है। हम ने जो आगम में पढ़ा, वैसी चर्या अपनाई है और वैसा ही वेश है। यह मुनि परम्परा तो पंचमकाल के अंत तक चलेगी।

हीरालाल—लेकिन हम कैसे माने कि इस पंचमकाल में भी सच्चे साधु हैं।

आचार्यश्री—भव्य प्राणी! वो सामने देखो, वह किस चीज का पेड़ है ?

खुशालचंद—महाराज! वह तो आम का पेड़ है।

महाराज श्री—लेकिन उसमें तो आम लगा नहीं, फिर तुमने कैसे जाना कि वह आम का पेड़ है ?

हीरालाल—उसके पत्रादि को देखकर पता लग रहा है कि वह आम का पेड़ है, अभी आम का सीजन नहीं है, ना महाराज जी! इसलिए इसमें आम नहीं है।

महाराज श्री—बिल्कुल ठीक कहा वत्स तुमने! है तो वह आम का ही पेड़, लेकिन मौसम आने पर ही फल देगा, ठीक वैसे ही हमारी चर्या मुनियों की चर्या है, हमारा वेष दिगम्बर वेष है, फर्क मात्र इतना है कि पंचमकाल में मोक्ष नहीं है,

लेकिन हम इसी वेष से आगे क्रम-क्रम से संसार परम्परा को समाप्त कर जब मोक्ष जाने का मौसम यानी काल आएगा, तभी मोक्ष जाएंगे।

(दोनों ही आचार्यश्री के इस उत्तर से निरुत्तर हो एक-दूसरे का मुँह देखने लगते हैं और गुरुदेव के चरणों में साष्टांग लेट जाते हैं)

हीरालाल, खुशालचंद—हे संसारसिन्धुतारक गुरुवर! आज हमारे दर्शन कर हमारा मानव जीवन धन्य हो गया। आप सचमुच सच्चे साधु हैं। प्रभो! हमें भी मोक्षप्रदायिनी ऐसी परम पावन जैनी दीक्षा प्रदान करें।

आचार्यश्री—(उन दोनों के त्याग व वैराग्य को देखकर) हे भव्य प्राणियों! आप लोग निकट मोक्षगामी लगते हैं, मैं आपको दीक्षा अवश्य दूँगा परन्तु आप लोग एक बार घर जाकर परिवारजनों को संतुष्ट करके क्षमायाचनापूर्वक आज्ञा लेकर आवें।

दोनों ब्र.—अवश्य गुरुदेव अवश्य! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। हम शीघ्र ही घर जाकर आते हैं। नमोस्तु गुरुवर, नमोस्तु।

(दोनों ब्र. शीघ्र ही अपने-अपने घर पहुँचकर क्षमायाचना आदि करते हैं। ब्र. हीरालाल जी जब बड़े भाई-भाभी से क्षमायाचना करते हें, तब उनका हृदय विह्वल हो उठता है। यद्यपि वह जानते थे कि यह घर का हीरा नहीं अपितु संसार को प्रकाशमान करने वाला हीरा है। फिर भी मोह के आवेश में अश्रुधारा बह उठती है और वे कहते हैं-)

गुलाबचंद—भाई! अब तुमने सप्तम प्रतिमा ले ही ली है, अतः अब घर में रहकर धर्माराधना करो, मैं कभी उसमें बाधक नहीं बनूँगा। लेकिन मेरे हीरा, मुझे अकेला छोड़कर मत जाओ।

भाभी—(हीरा के चरणों का स्पर्श करती हुई)–भैया! मुझ अभागन को तो सास-ससुर की सेवा, उनका प्यार-दुलार तो नसीब नहीं हुआ, अब आप भी चले जाओगे तो हमारा कौन रह जाएगा, आप हमें छोड़कर मत जाइए, हमें भी सेवा का कुछ मौका दीजिए।

हीरालाल—(भईया-भाभी को समझाते हुए) भैय्या, भाभी! आप तो मेरे माता-पिता के समान हैं। देखिए न! हम लोगों ने इस असार संसार में भटकते हुए न जाने कितने दुःख उठाए हैं। बड़े पुण्य से मनुष्य जन्म पाकर त्याग के भाव बने हैं। इसलिए आप लोग मुझे न रोकें और खुशी-खुशी अनुमति प्रदान करें, मेरा प्रत्येक पल आत्म चितन में रमने को आतुर है।

(दोनों एक क्षण तो स्तब्ध रह जाते हैं किन्तु उस आत्मपथ के पथिक को रोक नहीं पाते और उसे खूब-खूब आशीर्वाद प्रदान करते हैं। सम्पूर्ण मोह का त्यागकर हीरालाल खुशालचंद को लेकर आचार्यश्री के पास कुम्भोज पहुँचते हैं और उन्हें नमन कर पुनः दीक्षा की याचना करते हैं)–

दोनों ब्रह्मचारी–(आचार्यश्री को नमन करके) नमोस्तु आचार्यश्री। हम घर से आज्ञा लेकर आ गए हैं, हमारा वैराग्य उत्कृष्ट है हमें मुनिदीक्षा प्रदान करें।

आचार्यश्री–हे भव्ययुगल! तुम लोग खूब सोच विचार लो। इसे मात्र लेना नहीं अपितु निरतिचार पालना अति आवश्यक है, इसको लेना तलवार की धार पर चलने के समान है। यह दीक्षा कष्ट उपसर्ग आदि आने पर भी छोड़ी नहीं जाती। क्या तुम 28 मूलगुणों का पालन कर सकते हो।

दोनों–अवश्य गुरुदेव! हम प्राणप्रण से इस बात के लिए कटिबद्ध है हम शरीर का त्याग कर देंगे, लेकिन दीक्षा लेकर इसमें कोई शिथिलता नहीं आने देंगे।

आचार्यश्री–(पुनः एक बार दृढ़ता की परीक्षा करते हैं) शिष्यों! यदि तुम वास्तव में संसार से विरक्त होकर आए हो और इन कष्टों को सहने की क्षमता रखते हो, तो मैं तुम्हें अवश्य दीक्षा दूंगा।

दोनों–हे गुरुदेव! आप ही हमारे सर्वस्व हैं, आप अकारण बंधु हैं, जो हमें संसार समुद्र से पार लगा रहे हैं। हम अबोध बालक बस आपकी ही शरण में हैं।

(आचार्य श्री उन्हें अपना शिष्य बनाकर उन्हें धार्मिक अध्ययन कराते हैं, श्रावक की चर्या, उनके कर्त्तव्य आदि बताकर ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप बताते हैं और सन् 1923 की फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को सर्वप्रथम दोनों को क्षुल्लक दीक्षा प्रदान करते हैं, उस समय दीक्षा का समाचार सुनकर सारी जनता उमड़ पड़ती है और उनके वैराग्य की प्रशंसा करती है। आचार्यश्री दीक्षा के पश्चात् ब्र. हीरालाल को क्षुल्लक वीरसागर और ब्र. खुशालचंद को क्षुल्लक चन्द्रसागर नाम देते हैं, जिसका सभी जयकार के साथ स्वागत करते हैं। दोनों क्षुल्लक जी आचार्य श्री के दाएँ-बाएँ हाथ के समान पदविहार करते हुए धर्मप्रभावना करते हुए समडोली ग्राम में पहुँचते हैं। चूँकि क्षुल्लक वीरसार जी को अभी पूर्ण संतुष्टि नहीं थी अतः वे पुनः आचार्यश्री से निवेदन करते हैं)-

क्षुल्लक वीरसागर जी–गुरुदेव! मैं मुनिदीक्षा लेना चाहता हूँ। आप विश्वास करें, मैं आपके निर्देशानुसार प्रत्येक चर्या का निर्दोष रीति से पालन करूँगा।

आचार्यश्री–ठीक है वत्स! तुम्हारी तीव्र अभिलाषा को देखते हुए मैं तुम्हें

मुनिदीक्षा अवश्य प्रदान करूँगा।

(अब क्षुल्लक वीरसागर जी मुनि वीरसागर जी बन गए और आचार्यश्री के प्रथम शिष्य होने का गौरव प्राप्त किया। मुनिदीक्षा के पश्चात् गुरु के साथ दक्षिण से उत्तर तक पद विहार कर 12 चातुर्मास करते हुए गुरु की अनमोल शिक्षाओं को जीवन में गांठ बांधकर रखा। उस समय तक आचार्यश्री के 12 शिष्य बन चुके थे अतः आचार्यश्री ने सभी शिष्यों को धर्म प्रचार हेतु अलग-अलग विहार करने का आदेश दिया। गुरु को छोड़ने की कल्पना मात्र से दुःखी, किन्तु गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर सभी शिष्यगण यत्र-तत्र विहार कर धर्म की खूब प्रभावना करते हैं।

आत्मकल्याण के साथ परकल्याण की भावना से गुरु ने अनेक मुनि, क्षुल्लक, ऐलक आदि बनाए, अनेक महिलाओं को आर्यिका, क्षुल्लिका के व्रत प्रदान कर मोक्षमार्ग में लगाया। सन् 1955 में कुंथलगिरि में जब आचार्यश्री शांतिसागर महाराज की समाधि हुई, उस समय वीरसागर महाराज जयपुर-खानिया में थे। तब आचार्यश्री ने पत्र द्वारा अपना आचार्यपद त्यागकर उन्हें प्रथम पट्टाचार्य घोषित किया। बंधुओं! कौन जानता था कि गुरुभक्ति के फलस्वरूप एक छोटे से गाँव में जन्मा बालक सबका मार्गदर्शक आचार्य बन जाएगा। गुरु के द्वारा प्राप्त आचार्यपद का कुशलतापूर्वक संचालन करते हुए आचार्यश्री ने कई चातुर्मास यत्र-तत्र नगरों में किए। एक बार नागौर में आचार्यश्री चातुर्मास कर रहे थे, उनके पीठ में एक भयंकर फोड़ा हो गया)–

अनेक श्रावक बैठे हैं, महाराज को पीठ में फोड़ा होने से तीव्र वेदना और भयंकर ज्वर है, फिर भी वह मुस्करा रहे हैं, श्रावकगण चिंतित हैं।

श्रावक (1) (दूसरे से)–भइया, क्या इसका कोई इलाज नहीं है, इतना कष्टप्रद फोड़ा फिर भी महाराज मुस्करा रहे हैं, धन्य है इनका त्याग।

श्रावक (2)–हाँ भाई, जैनी चर्या बड़ी कठिन है। हम जैसे श्रावक तो अब तक न जाने कितने इंजेक्शन और दवाइयाँ ले चुके होते।

श्रावक (3)–हाँ भाई! महाराज जी तो शुद्ध प्रासुक औषधि ही लेते हैं, वह भी 24 घंटे में एक बार, क्या करें कुछ समझ में नहीं आता।

श्रावक (2)–क्यों न ऐसा करें कि डॉ. को बुलाकर एक बार निदान तो कर लें।

श्रावक (3)–यह बहुत ठीक कहा तुमने, मैं अभी डॉ. को बुलाकर लाता हूँ।

(जाकर डॉ. को बुलाकर लाता है, डॉ. देखता है कि फोड़ा पूरा पक गया है

लेकिन भय के मारे चुपचाप पीछे खड़ा है। महाराज शास्त्र-स्वाध्याय में निमग्न हैं। तब एक श्रावक कहता है–

श्रावक–(महाराज जी से हाथ जोड़कर)-महाराज जी! डॉ. आ गए हैं, उनका कहना है कि फोड़े का आपरेशन करना होगा।

आचार्यश्री–(एक नजर डॉ. पर डालकर पुनः)-भाई! तुम मुझे यह बता दो कि इस आपरेशन में कितना टाइम लगेगा, मैं इंजेक्शन तो लगवाऊँगा नहीं।

डॉ.–गुरुदेव! आपके इतने बड़े फोड़े का आपरेशन बिना बेहोशी के हो पाना असंभव है, आप इस असह्य वेदना को सहन नहीं कर सकते।

आचार्यश्री–भैय्या! हम तो अनादिकाल से जन्म-मरण के दुख सहन कर रहे हैं फिर यह कौन सा कष्ट है ? तुम अपना काम शुरू करो, बस मुझे समय बता दो।

(महाराज की दृढ़ता देख डॉ. ने काँपते हाथों से औजार निकाला और महाराज को एक घंटे का समय दिया। उसने सोचा इतने पैने औजार लगते ही चीत्कार कर उठेंगे परन्तु डॉ. भी यह देखकर दंग रह गया कि वे तपस्वी अपने चिंतन में मग्न हैं और उनने उफ तक नहीं की है। वह कहता है-)

डॉ.–मुनिवर! मैंने आपरेशन कर दिया है। आप महान हैं जो इतनी पीड़ा को सहज रूप में सहन कर लिया। कैसे जीता इस पीड़ा को आपने।

आचार्यश्री–भाई! हमारे जैनधर्म में गोम्मटसार कर्मकाण्ड नाम का एक ग्रंथ है उसमें कर्मप्रकृतियों का वर्णन है, मैं इसी का चिंतन कर रहा था कि यह जीव संसार में कैसे कौन से कर्म का बंध करता है आदि।

डॉ.–हे स्वामी! मैं आपके धैर्य को बार-बार नमस्कार करता हूँ।

(बारम्बार नमस्कार कर चला जाता है) बंधुओं! आचार्यश्री शांत, गंभीर, महापुरुष थे, उनके आगे पशु भी अपनी क्रूरता छोड़ देते थे, हिंसा प्रेमी अहिंसक हो जाते थे। गाँव-गाँव विहार करते हुए उन्होंने अनेक स्थानों पर सदियों से चली आ रही बलिप्रभा को अपने उपदेशों से बंद कराया। उनकी तपस्या के एक नहीं अनेकों चमत्कार उनके जीवन को पढ़ने पर ज्ञात होते हैं। ऐसे महामना गुरुवर ने एक और महान कार्य किया। बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती शांतिसागर महाराज के प्रथम पट्टाचार्य ने इस वसुधा को प्रथम बाल ब्रह्मचारिणी आर्यिका माता प्रदान कीं, जिन्होंने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर इस भूतल को अनमोल निधियाँ प्रदान की, जिसे युगों-युगों तक स्मरण किया जाता रहेगा। सन्

1956 में वैशाख कृष्णा दूज, माधोराजपुरा में चारित्रचक्री गुरुवर की आज्ञा से क्षुल्लिका श्री वीरमती माताजी की आर्यिका दीक्षा हो रही थी, विशाल पाण्डाल लगा था, अचानक चमत्कार सा हुआ, जो सबको आश्चर्यचकित कर गया।)

आचार्यश्री वीरसागर महाराज आर्यिका दीक्षा के संस्कार करने से पूर्व सभी को उपदेश प्रदान कर रहे हैं, तभी शोर मचता है–

सामूहिक स्वर–अरे! हटो, हटो, भागो, भागो। सांड आ गया, यह सबको मार गिराएगा।

एक व्यक्ति–हे भगवान्! यह क्या हो रहा है, यह सांड कहीं साधुओं का अहित न कर दे।

तीसरा–अरे, अपनी छोड़ो भइया, गुरुवर की रक्षा करो।

(तभी महाराज का शांत स्वर सुनाई पड़ता है)

आचार्यश्री–हे भव्यात्माओं! आप लोग बिल्कुल मत घबराइए, शांत हो जाएग। यह तो बेचारा मूक प्राणी है, किसी को कोई अहित नहीं पहुँचाएगा।

एक व्यक्ति–महाराज जी, वह आपकी ही तरफ आ रहा है, मेरा तो पूरा शरीर कांप रहा है, अरे कोई तो महाराज जी को बचाओ।

महाराज–भव्यात्मन्! डरो मत, कुछ नहीं होगा।

(तभी सचमुच चमत्कार होता है, सांड भीड़ को चीरता हुआ महाराज और पूज्य माताजी जिस मंच पर विराजमान थे, वहाँ बने चौक के सामने सिर टेककर पाँच मिनट मानो वंदना मुद्रा में ही खड़ा रह जाता है। तभी जनता आश्चर्यचकित हो 'वीरसागर महाराज की जय, ज्ञानमती माताजी की जयजयकारों से पाण्डाल को गुंजायमान कर देती है। आचार्यश्री उसे आशीर्वाद देते हैं और जनता उसे स्वादिष्ट मिष्टान्न खिलाती है, ऐसा आचार्यश्री के तप का चमत्कार था। सभी शिष्य प्रतिदिन उनके पास आकर उनसे अमूल्य शिक्षाएँ ग्रहण करते थे और उनका वात्सल्य प्राप्त कर धन्य हो जाते थे।

शिष्यगण आचार्यश्री के पास बैठे उनसे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं, आचार्यश्री उनसे कुशल क्षेम पूछ रहे हैं–

आचार्यश्री–कहिए शिष्यगण! आप सभी का रत्नत्रय एवं स्वास्थ्य सकुशल तो है ?

(समवेत स्वर) शिष्यगण–जी गुरुदेव! आपकी कृपा प्रसाद से हम सकुशल हैं, हे पूज्यवर! आपका रत्नत्रय सकुशल है ?

आचार्यश्री—देखो! मुझे तो दो रोगों ने बहुत परेशान कर रखा है।

(सभी चिंतित हो जाते हैं) एक शिष्य (मुनि)-महाराज श्री! क्या हुआ आपको, आपने हमें कुछ भी नहीं बताया कि कौन से दो रोग प्रतिदिन आपको परेशान करते हैं।

आचार्यश्री—भई, मुझे एक तो भूख लगती है, दूसरे नींद आती है। (सुनकर सभी हँस पड़ते हैं)

मुनि (2)—पूज्यश्री! हमें जीवन निर्माण हेतु एक शिक्षा प्रदान कीजिए ?

आचार्यश्री—देखो! तुम शिष्यगण मेरे अनुशासन में रहकर एकता के सूत्र में बंधे हो, इसीलिए मेरे आचार्यपद की गरिमा है, क्योंकि गुरु से शिष्यों की और शिष्यों से गुरु की शोभा रहती है।

आप सब प्रत्येक श्रावक को एक ही शिक्षा दें कि—सुई का काम करो, कैंची का नहीं।

ज्ञानमती माताजी—हे संसार तारक गुरुवर! सम्यक्त्व की दृढ़ता हेतु क्या करना उचित है ?

आचार्यश्री—कभी तृण मत बनो, पत्थर बनो अर्थात् सदा आगममार्ग में अचल रहो।

(पुनः)—ज्ञानमती! तुम सब प्रकार से योग्य हो, संघ संचालन, अनुशासन, ज्ञान आदि में बहुमुखी प्रतिभा की धनी हो, इसलिए मैं चाहता हूँ कि अपना संघ बनाकर पृथक् विहार करो।

माताजी—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है गुरुवर! परन्तु मैं गुरु की छत्रछाया से वंचित नहीं होना चाहती हूँ।

आचार्यश्री—मुझे ज्ञात है किन्तु कुछ दिन विहार कर पुनः वापस आ जाना।

माताजी—जैसी आपकी आज्ञा! मेरे लिए कोई शिक्षा गुरुदेव।

आचार्यश्री—ज्ञानमती! तुम्हारे लिए मेरी एकमात्र यही शिक्षा है कि सदैव अपने नाम का ध्यान रखना।

एक अन्य माताजी—(दूसरी से) अरे! आचार्यश्री ने माताजी को केवल एक ही शिक्षा दी, जबकि अन्य शिष्यों को वे कितनी-कितनी शिक्षा देते हैं।

दूसरी माताजी—माताजी! गुरुदेव सदा शिष्य का कुशल जौहरी की भांति परीक्षण कर शिक्षा देते हैं। ज्ञानमती माताजी तो वैसे ही अनमोल हीरा के समान गुणों से भरपूर हैं।

(और सचमुच ही गुरु से प्रदत्त उस एकमात्र शिक्षा को आपने अपने जीवन में अंगीकार करके ज्ञानमती माताजी ने अपने नाम को सार्थक कर दिखाया। बंधुओं! आचार्यश्री सचमुच रत्नपारखी थे, उन आचार्यश्री वीरसागर महाराज ने अपने 34 वर्षों के दीक्षित जीवन में जिनधर्म की पताका को दिग्दिगन्तव्यापी फहराया। सन् 1957 में उन्होंने जयपुर-खानिया में चातुर्मास किया। उस मध्य उनका शारीरिक स्वास्थ्य अत्यन्त क्षीण हो गया और आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन महामंत्र का स्मरण करते हुए उन्होंने इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। आज भले ही आचार्यश्री भौतिक शरीर से हमारे बीच में नहीं है किन्तु उनकी अमूल्य शिक्षाएँ आज भी विद्यमान हैं, जिन्हें निज जीवन में उतारकर हम अपने जीवन को कुन्दन बना सकते हैं।

आज उन गुरु की महान शिष्या परमपूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के दर्शन कर, उनकी चर्या को देखकर हम उन महान गुरु की महानता का परिज्ञान कर सकते हैं तो आइए उन गुरु को शत-शत नमन कर हम उनके गुणों को, उनकी शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करें।

'जय बोलिए वीरसागर महाराज की जय।'

आचार्य श्री वीरसागर काव्य चरित

रचयित्री-आर्यिका चंदनामती

(1)

तर्ज –जिन्दगी इक सफर है.....

गुरुपद से है प्रीति लगाना।
गुरुभक्ति के गीत है गाना।।
सुन भाई, सुन भाई, सुन भाई...।।टेक.।।
शान्तिसिन्धु आचार्य प्रवर।
उनके पट्टाचार्य प्रवर।।
वीरसागर जी का वर्ष सुहाना।
गुरुभक्ति के गीत है गाना।।
सुन भाई, सुन भाई, सुन भाई...।।1।।
प्रान्त महाराष्ट्र में जन्म हुआ।
वीर ग्राम तब उनसे धन्य हुआ।।
भाग्यवती माँ का लाल सुहाना।
गुरुभक्ति के गीत है गाना।।
सुन भाई, सुन भाई, सुन भाई...।।2।।
पिता रामसुख जी का भाग्य खिल गया।
हीरा जैसा हीरालाल पुत्र मिल गया।।
खुल गया माता-पिता का खजाना।
गुरुभक्ति के गीत है गाना।।
सुन भाई, सुन भाई, सुन भाई...।।3।।
हीरालाल बालब्रह्मचारी बन गये।
धीरे-धीरे वीरसागर मुनी बन गये।।
उनकी पुण्यकथा है सुनाना।
गुरुभक्ति के गीत है गाना।।
सुन भाई, सुन भाई, सुन भाई...।।4।।

इसीलिए ज्ञानमती माताजी ने।
दी है प्रेरणा गुरु का वर्ष मना लें।।
'चन्दनामती' यही है बतलाना।
गुरुभक्ति के गीत है गाना।
सुन भाई, सुन भाई, सुन भाई...।।5।।

सूत्रधार द्वारा-	**जनसमूह के द्वारा**
जैनी वीरों!	हाँ भाई हाँ (सामूहिक स्वर)
मेरी बात सुनोगे-	हाँ भाई हाँ (सामूहिक स्वर)
कुछ और सुनोगे-	क्या भाई क्या (सामूहिक स्वर)
मेरे संग में बोलो-	जय जय जय (सामूहिक स्वर)
जैनं जयतु शासनम्	वन्दे वीरसागरम् (सामूहिक स्वर)
जैनं जयतु शासनम्	वन्दे शान्तिसागरम् (सामूहिक स्वर)
वन्दे वन्दे मातरम्	वन्दे ज्ञानमति मातरम् (सामूहिक स्वर)

(2)

तर्ज –भावों के फूलों से.....

गुरुओं की भक्ति से सब सुख मिलते हैं।
गुरुओं की शक्ति से सब दुख टलते हैं।।
सारी उमर क्योंकी तप ये करते हैं।।गुरुओं की.।।टेक.।।
हीरालाल जी ने एक बार सुन लिया।
शांतिसागर मुनि जी का नाम सुन लिया।।
फिर वे इक मित्र के संग घर से चलते हैं।
चलकर कोन्नूर में ये मुनि से मिलते हैं।।
उनसे निज मन की शंका दूर करते हैं।।गुरुओं की.।।1।।
बोले वे इस कलि युग में नहिं मुनि हो सकते हैं।
आपको भी हम कैसे मुनिवर कह सकते हैं।।
क्योंकि मुनि ऋद्धि सिद्धि सुख को वरते हैं।।गुरुओं की.।।2।।
शांतिसिन्धु ने उनको युक्ति से समझाया था।
'चन्दनामती' मुनिपद की महिमा को बतलाया था।।
दोनों ही मित्र गुरु के पद में झुकते हैं।।गुरुओं की.।।3।।

कुछ दिन में ही दोनों ने दीक्षा धारण कर ली।
क्षुल्लक एवं मुनि बनकर गुरुशिक्षा पालन कर ली।।
वीरसागर व चन्द्रसागर बनते हैं।।गुरुओं की.।।4।।

Religious Gentlemen and Sisters!

Listen my words and open your heart. Acharya Shri Veer Sagar Maharaj was the first disciple of Charitra Chakravarti Acharya Shri Shantisagar Ji Maharaj and first Pattacharya of this pious Shantisagar tradition.

Once Acharya dev was in very painful condition during his initiated life, because a big Adeeth forha (अदीठ फोड़ा) that is, an Abcess appeared on his back.

Even a Surgeon was also not ready for surgery without injection or anesthesia, but Acharya shri told him that you do your work of operation without injection; I will do my work by sitting in deep meditation. I will not make any disturbance in your operation work; don't worry doctor! I can bear all pain ful condition.

Doctor operated him successfully and Acharya deva remained seated like a marble stone idol. Seeing this, all the Jain Community present there shouted-Jai ho, Jai ho, Jai ho, Acharya Shri Veersagar Maharaj ki Jai ho.

Think! Such a great endurance was lying in Acharya Shri.

अब सुनिये आगे का कथानक कि आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज केवल नाम से ही महान नहीं थे, वहाँ अपने शरीर पर उपसर्ग एवं कष्टों को भी सहन करने में सचमुच महावीर के समान अपने नाम को सार्थक करने वाले महापुरुष थे।

(3)

तर्ज –दीवाना.....

कहानी मुनिवर की, कहानी गुरुवर की,
रोमांचक है महान-कहानी मुनिवर की।।
वीरसिन्धु गुरुवर थे मानो,
वीरप्रभू के समान.....कहानी.....।।टेक.।।

श्री आचार्य शान्तिसागर के पट्टाचार्य बने थे।
आगम एवं गुरु आज्ञा का पालन वे करते थे।।
चउविध संघ का संचालन,
करते थे पिता समान.....कहानी.....।।1।।

एक बार इक फोड़ा भयंकर उनकी पीठ में निकला।
असहनीय पीड़ाकारी डॉक्टर भी देख के पिघला।।
बिन बेहोशी आप्रेशन को,
देख थे सब हैरान.....कहानी.....।।2।।

समयसार का भेदज्ञान इनमें साकार हुआ था।
पुद्गल काया भिन्न है मुझसे यह आभास हुआ था।
तभी "चन्दनामती" इन्हें सब,
करते कोटि प्रणाम....कहानी....।।3।।

प्यारे भाइयों और बहनों!

आप सुन रहे हैं बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम शिष्य एवं प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर महाराज की जीवन झाँकी।

वे आचार्य देव समता की प्रतिमूर्ति थे। ख्याति-लाभ-पूजा से दूर रहकर वे मात्र आत्म साधना में लीन रहते थे और अपने चतुर्विध संघ के साधु-साध्वियों के प्रति परम वात्सल्य भाव रखते थे। इसीलिए सभी शिष्य-शिष्याओं के हृदय में उनके लिए अपने पिता के समान भाव रहता था।

आप आगे सुनिये कि आचार्य श्री किस प्रकार से अपने वचनामृत से सभी के शारीरिक-मानसिक दुःखों को शान्त कर दिया करते थे।

(4)

तर्ज –णमोकार णमोकार, महामंत्र णमोकार.....

मुनिराज मुनिराज, वीरसागर मुनिराज।
जिनकी शरण में आकर सबके बन जाते हैं काज।।
मुनिराज.।।टेक.।।

सभी शिष्य-शिष्याएँ अपना, सुख-दुख कहते गुरु से।
मंद मंद मुस्कान से गुरुवर हरते सबका दुख थे।।
माता-पिता-बन्धु बनकर वे रखते सबका ख्याल।।मुनिराज.।।1।।

एक बार गुरुवर ने कहा, दो रोग मुझे दुख देते।
नींद व भूख यही दो मुझको, परेशान हैं करते।।
उनकी वाणी सुन शिष्यों ने झुका दिया निज माथ।।मुनिराज.।।2।।

बोले इक दिन सुई का काम करो कैंची नहिं बनना।
करो सृजन का काम ''चन्दनामती'' न विघटन करना।।
ऐसे सूत्र वचन से ही वे कहलाये गुरुराज।।मुनिराज.।।3।।

जय बोलिये-आचार्य परमेष्ठी भगवान की जय।
आचार्य श्री वीरसागर गुरुवर्य की जय।

बन्धुओं! आप समझ चुके हैं कि सन् 2011-2012 में ''आचार्य श्री वीरसागर वर्ष'' के माध्यम से आप सभी को उन आचार्यश्री के विषय में कुछ प्रसंग जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

यह तो सभी को मालूम है कि जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, सरस्वती की प्रतिमूर्ति, चारित्रचन्द्रिका एवं बीसवीं सदी की प्रथम बालब्रह्मचारिणी आर्यिका परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी सम्पूर्ण जैन समाज को समय-समय पर कोई न कोई महान आयोजन करने की प्रेरणा प्रदान किया करती हैं। इसी शृँखला में उन्होंने अपने गुरुदेव आचार्य श्री वीरसागर महाराज का वर्ष मनाने की प्रेरणा प्रदान की है। इसीलिए अक्टूबर सन् 2011 से 2012 तक आचार्यश्री के विषय में पूरे देश के अन्दर अनेकानेक कार्यक्रम आयोजित किये गये हैं।

(5)

तर्ज –जपूँ मैं जिनवर जिनवर.....

सभी मिल बोलो जय जय, जैन सन्तों की जय जय।
मुक्तिमार्ग के ये ही पथिक हैं सच्चे, मुनिवर सच्चे, गुरुवर सच्चे।।
सभी मिल बोलो जय जय..।।टेक.।।

वीरसिन्धु आचार्य प्रवर थे, रत्नपारखी वे गुरुवर थे।
शिष्यरत्न बनते थे तभी तो उनके, मुनिवर सच्चे, गुरुवर सच्चे।।
सभी मिल बोलो जय जय..।।1।।

घटना है उन्निस सौ छप्पन की, दीक्षा ज्ञानमती जी को दी थी।
अतिशयकारी नाम दिया तब तुमने, मुनिवर तुमने, गुरुवर तुमने।।
सभी मिल बोलो जय जय..।।2।।

नाम ज्ञानमती सार्थक हो गया, रत्नत्रय से युक्त हो गया।
वृद्धि हुई गुरुकुल उपवन की उनसे, गुरुवर तुमसे, मुनिवर तुमसे।।
सभी मिल बोलो जय जय..।।3।।

युग युग कीर्ति बढ़े गुरुवर की, यही 'चन्दनामति' है विनती।
हमको भी आशीष मिले गुरु तुमसे, गुरुवर तुमसे, मुनिवर तुमसे।।
सभी मिल बोलो जय जय..।।4।।

(6)

तर्ज –माई रे माई.....

श्री आचार्य वीरसागर की, ज्ञानवाटिका प्यारी।
उनके ज्ञान पुष्प से तुम, महका लो अपनी क्यारी।।
जय हो वीर सिन्धु की जय, जय हो वीर सिंधु की जय.।।टेक.।।

सदी बीसवीं के श्री प्रथमाचार्य शान्तिसागर हैं।
उनके प्रथम शिष्य अरु पट्टाचार्य वीरसागर हैं।।
उनकी शिष्या ज्ञानमती जी की, महिमा बड़ी निराली।
उनके ज्ञानपुष्प से तुम, महका लो अपनी क्यारी।।
जय हो वीरसिन्धु की जय.....4।।1।।

महाराष्ट्र के वीर ग्राम में, जन्म हुआ था इनका।
शान्तिसिंधु के दर्शन करके धन्य किया तन मन था।।
बाल ब्रह्मचारी यति बनकर, किया तपस्या भारी।
उनके ज्ञान पुष्प से तुम, महका लो अपनी क्यारी।।
जय हो वीरसिन्धु की जय.....4।।2।।

शरदपूर्णिमा दो हजार ग्यारह को दीप जलाया।
गणिनी माता ज्ञानमती ने नूतन वर्ष चलाया।।
इसीलिए 'चन्दनामती' इस वर्ष की महिमा निराली।
उनके ज्ञान पुष्प से तुम, महका लो अपनी क्यारी।।
जय हो वीरसिन्धु की जय.....4।।3।।

आचार्य शांतिसागर परम्परा का पद्यमयी इतिहास

यह भारत वसुन्धरा ऋषियों की जन्मभूमि कहलाती है।
उनके ही पावन कृत्यों से यह कर्मभूमि कहलाती है।।
यहाँ धर्म की गंगा बहने से यह धर्मभूमि कहलाती है।
परकृत उपसर्ग सहन करने से धन्य भूमि कहलाती है।।1।।

यहाँ कितने ही कविराज हुए जो गुरु महिमा लिख चले गए।
क्या दौलत क्या भूधर, द्यानत को गुरु के दर्शन नहीं हुए।।
कब मिलहीं वे मुनिराज जिन्होंने से सरेंगे सगरे काज मेरे।
बस यही पंक्ति रटते रटते चल दिये काल के मुख में वे।।2।।

बीसवीं सदी का यह मार्मिक इतिहास सुना है गुरुओं से।
जब दक्षिण भारत में केवल दो एक मुनी ही रहते थे।।
उत्तर भारत में नाम लेश भी सुनने में कम आता था।
अतएव शास्त्र का पठन श्रवण भक्तों की प्यास बुझाता था।।3।।

इक शांतिसिंधु नामक मुनिवर देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य हुए।
निज शुद्ध दिगम्बर चर्या से वे जग में बहुत प्रसिद्ध हुए।।
आजादी से त्रय युग पहले वे सप्तऋषी संग आए थे।
आचरणों का दुर्भिक्ष दूर करने वे दिल्ली आए थे।।4।।

सम्मेदशिखर जी सिद्धक्षेत्र यात्रा को मुनि संघ निकला था।
तब सारे उत्तर भारत में मुनि के अस्तित्व को खतरा था।।
पर दृढ़ता की उस मूरत ने सबके ही छक्के छुड़ा दिये।
अंग्रेजों ने भी शांतिसिंधु के सन्मुख मस्तक झुका लिए।।5।।

कहिं पर न विहार रुका उनका लन्दन से भी आज्ञा आई।
उस यथाजात मुद्रा धारी ने कई फोटुएं खिंचवाई।।
इतिहास हमारे भारत का युग युग तक यह बतलाएगा।
ऋषि मुनियों का उत्कृष्ट त्याग मानवता को दर्शाएगा।।6।।

उत्तर भारत के जन-जन में कुछ ज्ञान ज्योति प्रस्फुटित हुई।
जहाँ खान पान अविवेक पूर्ण वहिं कुछ विवेक की वृद्धि हुई।।
नेत्रों को धन्य किया अपने जीवन भी सफल किया जग ने।
मुनिदर्शन दुर्लभ को पाकर सौभाग्य सराहा था सबने।।7।।

जो चले गए बिन गुरुदर्शन उनकी आशा नहिं भर पाई।
पर हम सबकी प्यासी अँखियाँ मुनिवर का दर्शन कर पाईं।।
इक सदी बीसवीं के पहले आचार्य बने शांतिसागर।
इनसे आगे का स्रोत बहा ये चारितचक्री रत्नाकर।।8।।

मुनिपरम्परा के संग में ही नारी दीक्षा प्रारंभ हुई।
थीं चन्द्रमती आर्यिका बनीं गुरुवर की शिष्या प्रथम हुई।।
क्षुल्लिका अजितमती ने गुरुवर का वरदहस्त भी प्राप्त किया।
क्षुल्लक समन्तभद्र ने दीक्षा लेकर निज उत्थान किया।।9।।

इस तरह शताब्दी में चउविध संघ का क्रम गुरु ने चला दिया।
मानव की हृदय कलुषता को गुरु उपदेशों ने गला दिया।।
दीक्षाओं की श्रृँखला चली मुनिमारग आज प्रशस्त हुआ।
अस्वस्थ असंयत जीवन भी इनकी चर्या से स्वस्थ हुआ।।10।।

छत्तीस वर्ष तक शांतिसिंधु ने चतुर्मुखी सुविकास किया।
व्रतसंयम का चरमोत्कर्ष जब दस हजार उपवास किया।।
जिनवाणी सेवा में महान सिद्धान्त ग्रन्थ उद्धार किया।
चारित्रचक्रवर्ती कहकर जनता ने गुरु सत्कार किया।।11।।

यह पद केवल औपाधिक था तुमको उससे क्या नाता था।
तब ही तुम जैसी काया पर सर्पों ने झुकाया माथा था।।
कोन्नूर गुफा में बहुत देर तक सर्प गले में लिपट गया।
खुद को ही पावन करने को मानो वह तुमसे चिपट गया।।12।।

ऐसे कितने ही अतिशय जो तुमने जीवन में प्राप्त किए।
कलियुग में भी सतयुग जैसे गुरुदेव जगत को प्राप्त हुए।।
जितना काया से बन पाया उतना उससे श्रम साध लिया।
फिर जा कुंथलगिरि पर्वत पर आहार आदि भी त्याग दिया।।13।।

उन्निस सौ पचपन इसवी सन् चल रही समाधी गुरुवर की।
बारहवर्षीय तपस्या की अन्तिम तिथि आई मुनिवर की।।
आचार्यपट्ट निज त्याग दिया श्रीवीरसिंधु को कहलाया।
हो आज से तुम आचार्य चतुर्विध संघ ने उनको लिखवाया।।14।।

नूतन पिच्छी दे सूरजमल ब्रह्मचारी जयपुर भेज दिया।
आज्ञा कर ली स्वीकार शिष्य ने यह वापस संदेश दिया।।
गुरुदेव पूर्ण वैरागी को आत्मा आत्मा में लीन हुई।
भादों सुदि दूज पुण्यतिथि में आत्मा शरीर से भिन्न हुई।।15।।

लाखों नर नारी ने देखा मुनिवर का शौर्य पराक्रम भी।
नहिं कोई नेत्र बचे जिससे आंसू का झरना बहा नहीं।।
अब तो गुरु के आदेशों का पालन जीवन में शेष रहा।
अब जन समूह आचार्य वीरसागर में उनको देख रहा।।16।।

श्री ज्ञानमती माताजी जब क्षुल्लिका अवस्था में ही थीं।
गुरुवर के दर्शन करने को कुंथलगिरि पर वे पहुँची थीं।।
क्षुल्लिका विशालमती के संग जा गुरु के चरण प्रणाम किया।
परिचय संक्षिप्त पूछ गुरु ने मुनि वीरसिंधु का नाम लिया।।17।।

आचार्यश्री के हाथों से ही दीक्षा की शुभ इच्छा थी।
पर गुरु ने अपना त्याग बता उनको छोटी सी शिक्षा दी।।
उत्तर की अम्मा कहकर लघुवय लखकर गुरु संतुष्ट हुए।
तुम वीरसिंधु से दीक्षा लेना यह कह आशिर्वचन दिये।।18।।

जयपुर में ही शुभ तिथि मुहूर्त में प्रथम पट्ट अभिषेक हुआ।
मुनि वीरसिंधु ने उदासीन मन से गुरुपद स्वीकार किया।।
आचार्य वीरसागर जी की जयकारों से नभ गूँज उठा।
उस युग का था यह प्रथम चतुर्विध संघ न कोई दूजा था।।19।।

आचार्य वीरसागर मुनिवर मितभाषी ज्येष्ठचरित्री थे।
स्वाध्यायशील गंभीरमना दृढ़ता की एक प्रशस्ती थे।।
शिष्यों के संग में पिता सदृश रहकर वात्सल्य लुटाते थे।
सर्वांग योग्य शिक्षाओं से शिष्यों को योग्य बनाते थे।।20।।

शिष्यों की इसी श्रृँखला में क्वांरी कन्या का क्रम आया।
पहली कुमारिका बनी आर्यिका ज्ञानमती जग ने पाया।।
लगभग दो वर्षों तक उस राजस्थान प्रान्त में भ्रमण किया।
शारीरिक अशक्तता वश फिर गुरुवर ने जयपुर गमन किया।।21।।

खानिया क्षेत्र श्री वीरसिंधु का कर्मक्षेत्र बन आया था।
आश्विन मावस को जहाँ उन्होंने मरण समाधि बनाया था।।
सन् सत्तावन की काली मावस उन्हें उजाली बना गई।
साधक की साध्य साधना को मानों सिद्धी ही दिला गई।।22।।

अब संघ चतुर्विध के समक्ष नायक का प्रश्न उभर आया।
फिर संघ चतुर्विध ने मिलकर शिवसागर जी को अपनाया।।
थे बड़े तपस्वी ज्येष्ठ शिष्य आगम के दृढ़ श्रद्धानी थे।
निज गुरु का मान बढ़ाने में शिवसागर मुनिवर नामी थे।।23।।

आचार्य बने वात्सल्य दिया संघ एकसूत्र में बंधा रहा।
साधू साध्वी बनने का क्रम कुछ परम्परा से और बढ़ा।।
चालीस साधुओं के विशाल संघ का जग में इतिहास रहा।
मेवाड़ व राजस्थान तथा गुजरात में संघ प्रवास रहा।।24।।

श्री वीरसिंधु के बाद संघ गिरनार क्षेत्र की ओर चला।
ज्ञानी वरिष्ठ मुनि तथा आर्यिकाओं से गुरु सम्मान बढ़ा।।
इस यात्रा के पश्चात् पुनः वे राजस्थान पधारे थे।
भक्तों की भक्ती से हर्षित भी नभ के चाँद सितारे थे।।25।।

जिस राजस्थान मरुस्थल में हरियाली कहीं न दिखती है।
वहाँ देवशास्त्रगुरु भक्ती की हरियाली सब में दिखती है।।
बस इसीलिए मुनिसंघों का सान्निध्य अधिक वहाँ मिलता है।
अधिकाधिक पुण्यार्जन करने वालों का भाग्य निखरता है।।26।।

आचार्य संघ के सभी साधु संयम के कट्टर साधक थे।
निज ज्ञान साधना में तत्पर सचमुच शिवपथ आराधक थे।।
जीवन की सुख दुख घड़ियों में, दश वर्ष समय भी निकल गया।
आचार्य संघ श्री महावीर जी तीर्थक्षेत्र पर पहुँच गया।।27।।

श्री शांतिवीरनगर में शांतिनाथ प्रतिष्ठा अवसर था।
दो गुरुओं के संस्मरण चिन्ह से युक्त नवोदित तीरथ था।।
फाल्गुन शुक्ला में पंचकल्याणक उत्सव होने वाला था।
ग्यारह दीक्षा का एक साथ दीक्षोत्सव होने वाला था।।28।।

श्री शिवसागर जी की प्रसन्नता अंग अंग से फूट रही।
अपनी बगिया में वृद्धि सोच अन्तर की कलियाँ फूट रहीं।।
क्या मालुम था उन कलियों को खुद गुरुवर खिला न पाएंगे।
अपनी खुशियों में रमकर वे अपने ही संग ले जाएंगे।।29।।

ज्वर का प्रकोप कुछ बढ़ा देह में सहज क्षीणता आई थी।
पर उनके तप के नहिं समक्ष ऐसी प्रतीति हो पाई थी।।
ज्वर का होगा शायद निमित्त या काल स्वयं ही आया था।
फाल्गुनी अमावस दिवस पूज्यवर का अंतिम दिन आया था।।30।।

चल दिये चतुर्विध संघ छोड़ नवकार मंत्र सुनते-सुनते।
महावीर प्रभू के चरणों की पावन रज मस्तक पर धरके।।
लेकिन इस अघटित घटना को नहिं साधु सहन कर पाए थे।
थे कौन नेत्र जिनने आँसू के झरने नहीं बहाए थे।।31।।

यूँ तो सब विज्ञ जानते थे सबको इस जग से जाना है।
अपना शरीर जब नहिं अपना तब किसका कौन ठिकाना है।।
लेकिन ऐसे मार्मिक प्रसंग में ज्ञानी भी हिल जाता है।
यह धर्मप्रेम तो रागी मुनिराजों में भी आ जाता है।।32।।

उन्निस सौ उनहत्तर सन् का वह कैसा अशुभ दिवस आया।
जब सभी साधुओं के ऊपर से उठा पिता जैसा साया।।
उस परम कारुणिक अवसर के क्षण नहीं लेखनी लिख सकती।
गंभीर नदी भी रोई उस क्षण रोई महावीर धरती।।33।।

पर जाने वाला चला गया वह वापस नहिं आ सकता है।
संयोग वियोग रहित पदवी वैरागी ही पा सकता है।।
कुछ समय चला कुछ धैर्य बंधा आगे का निर्णय शेष बचा।
किसको आचार्य बनाना है सारे संघ में यह शोर मचा।।34।।

कुछ दिन से अलग धर्मसागर मुनिवर भी यहाँ मिले आकर।
चउविध संघ को निर्णय लेना था कौन बने आचार्य प्रवर।।
बहुतेक विचार विमर्शों में बस साधु संघ एकत्र हुआ।
श्रीधर्मसिंधु श्रुतसागर दो नामों पर बहुत विमर्श हुआ।।35।।

विद्वत्ता में श्रुतसागर जी का नाम लिया कुछ मुनियों ने।
लेकिन दीक्षा में ज्येष्ठ धर्मसागर जी थे सब मुनियों में।।
अतएव उन्हीं का तृतीय पट्ट आचार्य किया निर्णय सबने।
हो गया पट्ट अभिषेक वहीं चउसंघ के वे आचार्य बने।।36।।

कुछ पुण्य विशेष रहा उनका सर्वाधिक दीक्षा दे डालीं।
श्री धर्मसिंधु ने धर्मक्षेत्र में विस्तृत उन्नति कर डाली।।
पच्चीस सौंवे निर्वाण महोत्सव पर दिल्ली संघ आया था।
आचार्यश्री का प्रमुख मार्गदर्शन जन-जन को भाया था।।37।।

चारों प्रकार के जैनों का सम्मेलन इस उत्सव में था।
राष्ट्रीय महोत्सव का व्यापक रूपक भी इस उत्सव में था।।
तब से ही दिल्ली वासी भी आचार्य श्री को जान गए।
इस पावन परम्परा की कट्टरता को भी पहचान गए।।38।।

उत्तरप्रदेश पश्चिमी क्षेत्र का बच्चा-बच्चा कहता है।
ऐसा निस्पृह आचार्य नहीं जग में कोई मिल सकता है।।
इस क्षेत्र में भी उनके अनेक शहरों में संघ विहार हुए।
वे चार वर्ष पश्चात् पुनः मरुभूमि तरफ ही चले गये।।39।।

अट्ठारह वर्षों तक शिष्यों के संवर्द्धन का कार्य किया।
इस मध्य पूज्य श्रुतसागर जी ने पुनः संघ स्वीकार किया।।
मुनिराज अजितसागर जी का लघु संघ अलग ही रहता था।
शिष्यों के पठन व पाठन में ही तृप्त सदा वह रहता था।।40।।

उन्नीस शतक बहत्तर सन् में ज्ञानमती माताजी भी।
अपना आर्यिका संघ लेकर पैदल दिल्ली की ओर चलीं।।
निर्वाणोत्सव के बाद हस्तिनापुर की तरफ विहार हुआ।
उनके इस पद विहार से इक प्राचीन तीर्थउद्धार हुआ।।41।।

श्री धर्मसिंधु भी संघ सहित आए थे इस तीरथ पर।
महावीर प्रभू को सूरिमंत्र दे गये जो आज कमल मंदिर।।
यहाँ निर्मित जम्बूद्वीप रचना है ज्ञानमती की अमरकृती।
यह एक मिशाल जगत में है नारी आदर्शों की स्मृति।।42।।

सन् उन्निस सौ सत्तासी था सीकर में संघ विराज रहा।
आचार्य धर्मसागर जी का अंतिम समाधि का काल वहाँ।।
अपने शिष्यों के मध्य उन्होंने विधिवत् मरण समाधि किया।
प्रभु नाम मंत्र जपते-जपते गुरु वीरसिंधु का नाम लिया।।43।।

वैशाख बदी नवमी का दिन जब गुरुवर सबको छोड़ चले।
अपने आदर्शों की इस जग में अमिट छाप वे छोड़ चले।।
यह दीर्घ काल भी निकल गया मानों कुछ चंद समय बनकर।
फिर से जिम्मेदारी आई आचार्य बनाने की संघ पर।।44।।

पहले तो सभी साधुओं ने श्रुतसागर जी से विनय किया।
लेकिन निज नियमबद्धता से उनने न उसे स्वीकार किया।।
फिर वरिष्ठता की श्रेणी में श्री अजितसिंधु का क्रम आया।
तब शहर उदयपुर में चतुर्थ आचार्यपट्ट उनने पाया।।45।।

चउविध संघ का संचालन कर वे तो अपने में समा गए।
उन्निस सौ नब्बे की वैशाख पूर्णिमा को वे चले गए।।
सन् उन्निस सौ नब्बे को था दस जून ज्येष्ठ वदि में आया।
श्रेयांस सिंधु मुनि ने पंचम आचार्य पट्ट तब था पाया।।46।।

चौबीस जून सन् नब्बे में ही एक और आचार्य बने।
मुनि वर्धमानसागर द्वितीय थे पंचम पट्टाचार्य बने।।
सन् उन्निस सौ नब्बे से दो आचार्यों की यह परम्परा।
चल गई शांतिसागर जी का उपवन दोनों से हरा-भरा।।47।।

श्रेयांससिंधु ने संघ सहित दक्षिण की ओर विहार किया।
वात्सल्यमूर्ति आचार्यप्रवर ने धर्म का खूब प्रचार किया।।
दो वर्ष अभी नहिं पूर्ण हुए थे कालचक्र ने वार किया।
दो तीन दिनों की बीमारी ने उन पर कड़ा प्रहार किया।।48।।

था नगर बांसवाड़ा जहाँ पर उनकी समाधि का दिन आया।
फाल्गुन वदि एकम् दिवस संघ के लिए वियोगी क्षण आया।।
वे अपनी दृढ़ता का प्रतीक अपने पीछे बस छोड़ गए।
कितनों के बोझिल मन को वे अपनी ममता से तोड़ गये।।49।।

प्राणी अपने लघु जीवन में कितने ही स्वांग रचाता है।
पर कालचक्र के आने पर सब स्वांग रचा रह जाता है।।
केवल उसका शुभ अशुभ कर्म ही उसके संग में आता है।
बाकी सारा ताना बाना बस यहीं पड़ा रह जाता है।।50।।

फिर से विमर्श प्रारंभ हुआ षष्ठम आचार्य किसे मानें।
संघस्थ साधुओं के हार्दिक भावों को कैसे पहचानें।।
अब वरिष्ठता की श्रेणी में श्री अभिनंदनसागर मुनि हैं।
बस इसीलिए षष्ठम आचार्यपट्ट के वे ही लायक हैं।।51।।

यह निर्णय संघ साधुओं का शीघ्रातिशीघ्र सम्पन्न हुआ।
खान्दूकालोनी में जनता के मध्य कार्य सम्पन्न हुआ।।
तब संघ चतुर्विध ने उनको ही घोषित पट्टाचार्य किया।
सब जनसमूह ने भक्तिभाव से गुरु का जयजयकार किया।।52।।

तिथि फाल्गुन सुदी चतुर्थी का सन् उन्निस सौ बानवे वर्ष।
था आठ मार्च रविवार चतुर्विध संघ में छाया परम हर्ष।।
षष्ठम आचार्य पट्ट पद पर हो गए प्रतिष्ठापित मुनिवर।
श्री शांतिसिंधु की परम्परा में निष्कलंक आचार्य प्रवर।।53।।

जयशील रहो आचार्यप्रवर यह परम्परा जयशील रहे।
कलिकाल प्रभावों से विमुक्त दृढ़ता का शुद्ध प्रतीक रहे।।
अन्तिम मुनि वीरांगज तक यह मुनि परम्परा ही जाएगी।
''चन्दनामती'' यह श्रद्धा ही युग-युग तक ज्योति जलाएगी।।54।।

भजन

तर्ज - सुहानी जैनवाणी.....

दिगम्बर प्राकृतिक मुद्रा, विरागी की निशानी है।
कमण्डलु पिच्छिधारी नग्न, मुनिवर की कहानी है।।
दिशाएं ही बनीं अम्बर, न तन पर वस्त्र ये डालें।
महाव्रत पाँच समिति और, गुप्ती तीन ये पालें।।
त्रयोदश विध चरित पालन, करें जिनवर की वाणी है।
कमण्डलु.....।।1।।

बिना बोले ही इनकी शान्त, छवि ऐसा बताती है।
मुक्ति कन्यावरण में यह ही, मुद्रा काम आती है।।
मोक्षपथ के पथिकजन को, यही वाणी सुनानी है।
कमण्डलु.....।।2।।

यदि मुनिव्रत न पल सकता, तो श्रावक धर्म मत भूलो।
देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, परम कर्तव्य मत भूलो।।
यही बस ''चन्दनामति'' इन, सभी गुरूओं की वाणी है।
कमण्डलु.....।।3।।

आचार्य श्रीवीरसागर महाराज की आरती

ॐ जय जय गुरुदेवा, स्वामी जय जय गुरुदेवा।
जिनवर के लघुनन्दन-2, वीर सिन्धु देवा।।ॐ जय.।।

तिथि आषाढ़ सुदी पूनो को, ईर ग्राम जन्मे। स्वामी.....
भाग्यवती माँ पिता रामसुख-2, तुमको पा हर्षे।।ॐ जय.।।1।।

गुरू पूर्णिमा धन्य हुई तिथि, तुम सा गुरु पाकर। स्वामी.....
हीरालाल नाम पा-2, बन गये रत्नाकर ।। ॐ जय.।।2।।

श्रीचारित्रचक्रवर्ती के, प्रथम शिष्य माने। स्वामी.....
पट्टाचार्य प्रथम बन-2, निज पर को जानें।।ॐ जय. ।।3।।

संघचतुर्विध के अधिनायक, छत्तिस गुणधारी। स्वामी.....
गुरूपूर्णिमा के दिन जन्मे-2, गुरुपद के धारी।।ॐ जय.।।4।।

आश्विनवदि मावस को, मरण समाधि हुआ। स्वामी.....
जीवन मंदिर पर तब-2, स्वर्णिम कलश चढ़ा।। ॐ जय. ।।5।।

गुरु आरति से मेरा, आरत दूर भगे। स्वामी.....
तभी ''चन्दनामती'' हृदय में-2, आतम ज्योति जगे।। ॐ जय.।।6।।